Uttarakhand Open University, Haldwani - 263139
Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

ISBN. :
MMC-204-1(002153)

MMC-204

मीडिया और समाज MEDIA & SOCIETY

MMC-204

मीडिया और समाज
MEDIA & SOCIETY

पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

MMC-204

मीडिया और समाज
MEDIA & SOCIETY

Uttarakhand Open University, Haldwani - 263139
Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

अध्ययन समिति :

प्रो. एचपी शुक्ल
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो. आनंद प्रधान
भारतीय जनसंचार संस्थान, दिल्ली

प्रो. गोपाल सिंह
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

प्रो. हर्ष डोभाल
दून विश्वविद्यालय, देहरादून

भूपेन सिंह
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

संयोजक :

राजेंद्र सिंह क्वीरा, पत्रकारिता विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन :

प्रो0 गोविन्द सिंह, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
डॉ0 राकेश रयाल, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
श्री सुदीप ठाकुर, अमर उजाला , दिल्ली.
डॉ.वर्तिका नंदा, लेडी श्रीराम कालेज, दिल्ली
डॉ0 देवेन्द मेवाड़ी, विज्ञान लेखक दिल्ली
कल्लोल चक्रवर्ती, अमर उजाला दिल्ली
उमेश चतुर्वेदी, टेलीविजन पत्रकार, दिल्ली
चंद्रकांत सिंह, हिन्दुस्तान , दिल्ली
पीयूष पांडे, पत्रकार , दिल्ली

संपादकः

भूपेन सिंह

प्रकाशन वर्ष : **2015** पुनः प्रकाशन – 2019

ISBN No:

कापीराइट : © उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक : कुलसचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी– 263139 (नैनीताल)

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मुद्रकः सहारनपुर इलैक्ट्रिक प्रैस, बोमनजी रोड, सहारनपुर (उ०प्र०) प्रतियाँ : 100

MMC-204

मीडिया और समाज
MEDIA & SOCIETY

अनुक्रम

इकाई – 1	पृष्ठ 1
भारतीय समाज : परिवर्तन के मुद्दे, सामाजिक संस्थाएं समूह, समुदाय एवं परिवार	2–12
इकाई – 2	पृष्ठ 13
जनसंचार और भारतीय समाज	14–24
इकाई – 3	पृष्ठ 25
मानवाधिकार एवं मीडिया	26–43
इकाई – 4	पृष्ठ 44
मीडिया और महिला	45–59
इकाई – 5	पृष्ठ 60
पर्यावरण और मीडिया	61–74
इकाई – 6	पृष्ठ 75
साहित्य, संस्कृति और मीडिया	76–92
इकाई – 7	पृष्ठ 93
शिक्षा और मीडिया	94–107
इकाई – 8	पृष्ठ 108
रोजगार और मीडिया	109–120
इकाई – 9	पृष्ठ 121
अपराध और मीडिया	122–135
इकाई – 10	पृष्ठ 136
मीडिया और उपभोक्तावाद	137–156

BLANK
PAGE

इकाई-1

भारतीय समाज : परिवर्तन के मुद्दे, सामाजिक संस्थाएं समूह, समुदाय एवं परिवार

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 परिचय

1.3 सांस्कृतिक उद्भव : ऐतिहासिक संदर्भ

1.4 भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताएं

1.5 जाति व्यवस्था

- 1.5.1 वर्ण व्यवस्था
- 1.5.2 जजमानी व्यवस्था
- 1.5.3 आदिवासी समुदाय
- 1.5.4 एकता में अनेकता
- 1.5.5 समाज और परंपराएं

1.6 स्वतंत्र भारत की चुनौतियां

1.7 भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

1.10 संदर्भ ग्रंथ

1.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

1.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद हम निम्न विषयों को समझने में और उन पर अपनी राय बनाने में सक्षम होंगे : - भारतीय समाज की बुनावट और उसकी विशेषताएं

- भारतीय जाति व्यवस्था
- स्वतंत्र भारत की सामाजिक चुनौतियां, गरीबी, भेदभाव और सामाजिक तनाव
- महिलाओं, दलितों और आदिवासियों की स्थिति

1.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज इस हद तक बहुआयामी ह, जिसकी मिसाल विश्व की दूसरी महान सभ्यताओं में देखने को नहीं मिलती। आजादी की लड़ाई के दौरान पत्रकारिता की जो नींव पड़ी थी और जो सरोकार पद्दा हुए थे, वे पूंजीवादी समाज बनने के कारण बदल रहे हैं। गरीबी, कुपोषण, स्त्री और दलित के सवाल हाशिये पर चले गए हैं। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर का यह कथन आज भी कितना प्रासांगिक ह कि हमारी आज की समस्याएं राजनीतिक नहीं अपितु सामाजिक हैं यानी सांस्कृतिक हैं। इसी तरह कवि सुमित्रानंदन पंत की ये पंक्तियां, जो विश्व के संदर्भ में कही गईं, मगर हमारे देश के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासांगिक हैं-

राजनीति का प्रश्न नहीं, आज जगत के सन्मुख।
आज महत सांस्कृतिक समस्या, खड़ी जगत के सन्मुख।।

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के सामने जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियां थीं, उनसे निपटना आसान नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के छह दशकों बाद आज भी देश जातीय संकीर्णताओं से ऊपर नहीं उठ सका ह दलितों और आदिवासियों को देश की मुख्य धारा से जोड़ने के प्रयास हुए हैं, इसमें कामयाबी भी मिली ह, लेकिन यह चिंता की बात ह कि देश की एक तिहाई से अधिक आबादी आज भी गरीबी की रेखा से नीचे गुजर बसर करने को मजबूर ह वस्तुतः गरीबी और पिछड़ापन आर्थिक ही नहीं एक सामाजिक चुनौती भी ह इसके साथ ही

सांप्रदायिक दंगों ने भी देश के सामाजिक ताने-बाने को नुकसान पहुंचाया ह□ मगर इन सबके बावजूद भारतीय समाज अपने अंतरविरोधों से बाहर निकलने को निरंतर प्रयासरत ह□

1.2 परिचय

इस इकाई में हम भारतीय समाज और उसे प्रभावित करने वाले मुद्दों और कारकों को समझने का प्रयास करेंगे। विश्व के दूसरे समाजों से भारतीय समाज न केवल भिन्न ह, बल्कि अपनी इंद्रधनुषी छटा के कारण कई अर्थों में वह विशिष्ट भी ह□ भारतीय सभ्यता में जिस तरह की जातीय और भाषायी विविधता ह, वह किसी एक राष्ट्र में दिखाई नहीं देती। ऐसा लगता ह□ मानो भारतीय समाज कई समाजों से मिलकर बना ह□ भारतीय राष्ट्र के भीतर विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक और आर्थिक समूह अपनी भिन्न सांस्कृतिक परंपरा और विरासत के साथ रहते हैं।

हिंदू बहुसंख्यकों के साथ, मुसलिम (सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय), जन□, पारसी, सिख, बौद्ध, ईसाई और यहूदी समुदाय इसका अंग हैं। इनके साथ ही जनजाति समूह हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता ह□ इसके अलावा एक और विभाजन भारतीय समाज में देखा जा सकता ह, वह शहरी समाज और ग्रामीण समाज के रूप में ह□ भारतीय समाज का अध्ययन करते समय हमें भारत का इतिहास भी ज्ञात होना चाहिए। अमूमन भारतीय इतिहास को तीन हिस्सों में बांटकर देखा जाता ह, प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक। दरअसल भारतीय समाज का विकास इन्हीं कालखंडों में हुआ ह□ प्राचीन काल सिंधु घाटी की सभ्यता से शुरू होता ह□ और ईसवी सन् 1000 में उत्तरी भारत में तुर्की के आक्रमण के साथ खत्म होता ह□ इसके बाद मध्य युग मुगलों के शासन के साथ आगे बढ़ता ह□ और 18 वीं सदी के मध्य में अंग्रेजों के आगमन तक चलता ह□ औपनिवेशिक शासन की शुरुआत से लेकर आज तक का दौर आधुनिक काल कहा जाता ह□ हम देखेंगे कि धर्म ने भारतीय समाज और संस्कृति के विकास में क□सी भूमिका निभाई या उन्हें किस तरह प्रभावित किया। प्राचीन काल में हिंदू धर्म ने भारतीय संस्कृति और परंपरा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जाति व्यवस्था भी हमारी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की प्रमुख कारक रही ह□ इसके अलावा महिलाएं भी हमारी सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

हम हमारे समाज में महिलाओं के महत्व को समझने के साथ ही उनकी चुनौतियों को समझने का प्रयास करेंगे। भारतीय समाज शहरी और ग्रामीण समाज में भी बंटा हुआ ह□ भारत में समाजशास्त्रियों

ने देहात में जो सर्वेक्षण किए हैं, वे यह बताते हैं कि नए विचारों और विधियों को अपनाने में हमारी अनपढ़ ग्रामीण जनता तथाकथित शहरी आदमियों से अधिक सजग ह। यह अध्याय हमें आधुनिक भारतीय समाज के अन्य प्रभावी तत्वों को समझने में मदद करेगा। हम देखेंगे कि भारतीय समाज का उद्भव कैसे हुआ और आज उसके सामने किस तरह की चुनौतियां हैं।

1.3 सांस्कृतिक उद्भव: ऐतिहासिक संदर्भ

हर परिवर्तन किसी नए विचार के सामने आने पर होता ह। इसलिए आश्चर्य नहीं कि आर्थिक विकास के लिए भी सांस्कृतिक क्रांति आवश्यक होती ह। दुनिया में जहां भी आधुनिक ढंग का औद्योगिक समाज बन सका ह, वहां पहले कोई न कोई बड़ा आंदोलन चला। यह भी देखा गया ह कि आर्थिक विकास और नई सांस्कृतिक चेतना का प्रसार एक-दूसरे को बराबर प्रभावित करते रहते हैं। यह गौर करने लायक बात ह कि पश्चिमी देशों में औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रांति तब आई, जब मसीही धर्म की प्राचीन कैथोलिक मान्यताओं को प्रोटेस्टों ने चुनौती दी। इसी तरह जापान में आधुनिक विकास की नींव सेमुराई कहलाने वाले शूरवीर समुदाय ने रखी। इन लोगों ने जापान खतरे में ह। का नारा बुलंद किया और राष्ट्र को वह अनुशासन और उत्साह दिया जो जापान को एक बड़ी आधुनिक सैनिक आर्थिक शक्ति के रूप में उभार सका। भारतीय सभ्यता की जड़ें ईसा पूर्व 2300 की सिंधु घाटी की सभ्यता से आई हैं जिसे हड़प्पा संस्कृति के रूप में भी जाना जाता ह। आगे हम पढ़ेंगे कि किस तरह आर्य भारत आए और यहां बस गए। आर्य अपने साथ अपनी विशिष्ट संस्कृति लेकर आए थे। इस संस्कृति ने स्थानीय संस्कृति को समृद्ध किया। धीरे-धीरे भारत की विशिष्ट संस्कृति, व्यवहार और परंपराओं का उद्भव हुआ।

1.4 भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताएं

भारतीय समाज की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

1.4.1 नस्लीय बहुलता :

बहुलता भारतीय समाज की विशिष्ट पहचान ह। एथनोलॉजिकल अध्ययन में यह बात सामने आई ह कि भारत में छह मुख्य जातीय समूह का अस्तित्व रहा ह इनमें सबसे आदिम नीग्रिटो हैं, जो कि आज भी अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में और दक्षिण भारत के कुछ आदिम आदिवासी समूहों में पाए जाते हैं। उनके बाद प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड, अल्पाइन, मंगोलॉयड और मेडिटेरियंस आए जिनके कंकाल अवशेष आज भी उन जगहों पर मिल जाते हैं, जहां हड़प्पाकालीन खुदाई हुई थी। सबसे आखिर में यहां आर्य आए।

भारतीय आबादी के बुनियादी तत्व प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड से आए हैं। आज भी मध्य भारत, पूर्वी भारत, बिहार और ओडिशा में यह प्रजाति उपस्थित ह मंगोलॉयड का अस्तित्व भारत के उत्तर-पूर्वी और उत्तरी सीमांत क्षेत्रों में रहा ह

1.4.2 भाषायी बहुलता

भारत में चार भाषा समूहों की पहचान की गई ह द्रविड़, ऑस्ट्रिक, सिनो-तिब्बती इंडो-आर्यन। इंडो-आर्यन भाषा मूलतः पुरातन संस्कृत ही ह, जिसे आर्यों ने विकसित किया था। लटिन और जर्मन भाषाओं से इसकी अद्भुत समानताएं हैं। प्राकृत वदिक संस्कृत से संबद्ध होने के बावजूद भिन्न थी और यह आर्यों की बोलने वाली भाषा के रूप में प्रसिद्ध थी। अनेक भारतीय भाषाओं की वर्णमाला ब्राह्मी लिपि से ली गई ह इसका उद्भव ईसा पूर्व चथी सदी में हुआ था। द्रविड़ समूह की भाषाएं तेलुगू, कन्नड़, तमिल और मलयालम पूरी तरह भारतीय मूल की भाषाएं हैं। द्रविड़ समूह से संबद्ध अनेक भाषाएं दक्षिण भारत के टोडा, कोटा और कुडुगस तथा मध्य भारत की गोंडी, कुई, नाइकी और बंगाल, बिहार तथा झारखंड के मालतो, और कुरुख (ओरांव) जसे आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं।

ऑस्ट्रिक भाषाएं हैं:

मुंडारी, कोल, संथाल, कोरकु और खासी। ये भाषाएं मध्य भारत, पूर्वी भारत और उत्तर-पूर्व क्षेत्र के आदिवासियों द्वारा बोली जाती हैं। सिनो-तिब्बती भाषाएं नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम के आदिवासियों और हिमालय क्षेत्र के लोगों द्वारा बोली जाती ह भारतीय संविधान ने 18 प्रमुख भाषाओं को मान्यता दी ह, लेकिन पूरे देश में 1650 से ज्यादा बोलियां बोली जाती हैं। इस महान भाषायी विविधता के बावजूद सारे भारतीय संस्कृत की समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत का साझा करते हैं।

1.4.3 धार्मिक बहुलता

धार्मिक विचार भारतीय संस्कृति की एक बुनियादी विशेषता ह धार्मिक सहिष्णुता भारतीय मूल के सभी धर्मों का मूल तत्व ह यही वजह ह कि इस देश में हिंदू, बौद्ध, जैन, इसलाम, ईसाई, सिख, यहूदी, ज्योरास्ट्र जैसे धार्मिक मत या विचार यहां बिना किसी बाधा के पल्लवित हो सके। समकालीन भारतीय चिंतकों और संतों ने इनमें से प्रत्येक महान धर्म के मानवता को बढ़ाने के लिए दिए गए योगदान और उनमें निहित एकता के विचार के रेखांकित किया ह अध्यात्म और साधना भारतीय संस्कृति के दो विशिष्ट आयाम हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को अपनी मौलिकता और विशिष्टता बनाए रखने में मदद की ह

1.5 जाति व्यवस्था

1.5.1 वर्ण व्यवस्था - समाज विज्ञानी एमएन श्रीनिवास के अनुसार जाति निःसंदेह एक अखिल भारतीय अवधारणा ह जिसमें विभिन्न जातीय समूह खास तरह का अनुक्रम बनाते हैं, और प्रत्येक समूह का एक या एक से अधिक पारंपरिक पेशा रहा ह इसके साथ ही स्थानीय जातीय अनुक्रम में उसकी निश्चित जगह रही ह भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और जातीय विविधता जाति व्यवस्था और उसके उपादानों की देन ह इस सामाजिक संकीर्णता ने भारतीय समाज को हजारों छोटे-छोटे समाजों में बांट दिया ह वर्ण और जाति हालांकि एक दूसरे से भिन्न होते हैं, मगर अमूमन उन्हें एक समझने की भूल की जाती ह भगवतगीता ने भी गुणों के आधार पर समाज को चार वर्णों में विभाजित किया ह पूर्व वैदिक काल वर्णों वर्णों का स्पष्ट विभाजन को रेखांकित करता ह प्रत्येक वर्ण को एक विशिष्ट इकाई माना जाता था, और यह अपने सामाजिक जीवन के लिए अपने आपमें पूर्ण इकाई होती थी। इस संदर्भ में यह देखा जा सकता ह कि जहां वर्ण व्यवस्था पूरे देश में एक जैसी थी, वहीं जाति व्यवस्था का उदय क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ धीरे-धीरे हुआ।

जाति व्यवस्था के विकास में दो सिद्धांतों को आधार माना जाता है:

1. परिवार की धार्मिक एकता का सिद्धांत और दूसरा
2. स्वक्रम और स्वधर्म का सिद्धांत, किसी भी व्यक्ति द्वारा उस जीवन शैली का अनुसरण करने की आजादी, जिस समुदाय या जाति में उसने जन्म लिया हो।

जातीय संकीर्णता भले ही आज कम हो गई ह, लेकिन सामाजिक और राजनीतिक रूप से जाति व्यवस्था अभी खत्म नहीं हुई ह यही वजह ह कि एक बार फिर से देश में जाति जनगणना करवाई जा रही ह

जातिवाद के खतरों की ओर आगाह करते हुए कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था-

'हमें यह याद रखना चाहिए कि हम अपने समाज में जिन कमजोरियों को प्रश्रय देते हैं, वे अवश्य राजनीति में खतरे के स्रोत के रूप में उभरकर आएंगी। अपने ही समाज के मानवता के एक बड़े हिस्से को नीची जाति का और अस्पृश्य घोषित करने वाली हमारी मनोवृत्ति हमारी राजनीति को मानवशक्ति के नहीं, मानव शोषण और दमन के साधन के रूप में बदल देगी।'

1.5.2 जजमानी व्यवस्था

एक जाति समूह से दूसरे जाति समूह परंपरा, रूढ़ि और व्यवहार में भिन्न होते हैं। लेकिन एक जाति समूह अपने सदस्यों पर अपना प्रभाव कायम रखने के साथ ही अंतर्जातीय संबंधों और अंतर्जातीय सामाजिक मेलजोल को नियंत्रित करने का प्रयास करता ह चूंकि विभिन्न जातियां अनुवांशिक आधार पर व्यवस्थित की गई थीं, उनके कार्य भी विभाजित किए गए थे। पारंपरिक रूप से किसी भी जाति के सदस्य विभिन्न सेवाओं के लिए दूसरी जाति के सदस्यों पर निर्भर होते हैं, इसे जजमानी व्यवस्था कहा जाता ह समाजशास्त्री एम.एन श्रीनिवास इसे जातियों में क्षैतिज समानता कहते हैं। जजमानी व्यवस्था में किसी भी गांव में एक जाति समूह कुछ निश्चित सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक सेवाएं अन्य जातियों के सदस्यों को प्रदान करता ह मसलन ब्राह्मण जन्म, विवाह और मृत्यु आदि से संबंधित धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। इन सेवाओं के बदले उन्हें धन मिलता ह इसी तरह बढ़ई, लुहार, नाई और धोबी आदि के काम बंटे हुए हैं।

जजमानी व्यवस्था की एक विशिष्ट बात यह ह कि इसमें जजमान (सेवा प्रदाता) और प्रजन (सेवा ग्रहण करने वाला) के संबंध पीढी-दर पीढ़ी विरासत के रूप में चले आते हैं। जाति व्यवस्था की बुराइयों ने इस व्यवस्था को नुकसान पहुंचाया ह इस व्यवस्था की आड़ में उच्च जातियों के लोग नीची जातियों के लोगों का शोषण करते हैं और उनके साथ जातीय आधार पर भेदभाव करते हैं। इसके बावजूद आज भी ग्रामीण भारत में यह व्यवस्था कायम ह हाल के समय में जाति व्यवस्था सामाजिक और राजनीतिक तनाव का कारण भी बनी ह बल्कि जाति व्यवस्था ने देश की समकालीन राजनीति को काफी प्रभावित किया ह

1.5.3 आदिवासी समुदाय

भारत की कुल आबादी में तकरीबन आठ फीसदी आदिवासी हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में 400 से अधिक आदिवासी समूह निवास करते हैं। संविधान में आदिवासी समुदाय को पहली बार 'अनुसूचित जनजातियों के रूप में दर्ज किया गया। अनुच्छेद 366 (25) में अनुसूचित जनजातियों को ऐसी जनजातियों या जनजाति समूहों या ऐसी जनजातियों के भाग के रूप में परिभाषित किया गया ह, जो कि अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों के रूप में दर्ज हैं। मूलतः वनभूमि और वनोपज पर निर्भर रहने वाले आदिवासियों का जीवन भी समय के साथ बदला ह। विकास की नई अवधारणाओं ने उनके जीवन यापन के पारंपरिक साधनों को सीमित किया ह, तो दूसरी ओर उन्हें बाहरी समाज से साक्षात्कार का अवसर भी उपलब्ध कराया ह और रोजगार के नए अवसर भी दिए हैं। नसर्गिक रूप से स्वच्छंद जीवन जीने वाले आदिवासियों के विकास के प्रति सरकारों ने भी अपने स्तर पर कोशिशें की हैं, अनेक राष्ट्रीय और राज्य स्तर की योजनाएं बनी हैं, लेकिन आज भी उनका शोषण जारी ह। झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल जसे राज्य, जहां आदिवासी आबादी सर्वाधिक संख्या में निवास करती ह, ये राज्य आज भी माओवादी या नक्सली समस्या से लगातार ग्रस्त हैं।

1.5.4 एकता में अनेकता

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 1.21 करोड़ ह। यह दुनिया में जनसंख्या के मामले में चीन के बाद दूसरा बड़ा देश ह। भौगोलिक रूप से भी भारत विशाल देश ह, जिसकी भौगोलिक सीमाएं 15,200 किमी और समुद्री तटरेखा 6100 किमी तक फली हैं। इतने विस्तार के बावजूद हमारा देश एकता में अनेकता की मिसाल ह। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और गुजरात से लेकर मणिपुर तक भारतीयता की खुशबू महसूस की जा सकती ह। भारतीय संस्कृति की जड़ें प्राचीन अभिलेखों और वेदों में छिपी हैं।

भारतीय संस्कृति की एक विशिष्टता पारिवारिक जीवन के बंधन की पवित्रता में देखी जा सकती ह। भारत के सभी धर्म के लोग, चाहे वे किसी भी जाति या पंथ को मानने वाले हों, इसका पूरा सम्मान करते हैं। यही नहीं, भाषायी और क्षेत्रीय विविधता ने भी भारतीय संस्कृति को अत्यंत समृद्ध किया ह। इसे देश के किसी भी भू-भाग में आसानी से देखा जा सकता ह।

1.5.5 समाज और परंपराएं

पारंपरिक समाजों में शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया ने अनेक विश्लेषकों और विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया ह और उन्होंने इसी आधार पर सामाजिक संस्थानों, संगठनों और मानवीय संबंधों में होने वाले बदलाव के प्रतिमानों का विश्लेषण किया। परंपराएं किसी भी समाज का अभिन्न अंग होती हैं। भारतीय परंपराओं ने भारतीय समाज को विशिष्ट पहचान दी ह

1.6 स्वतंत्र भारत की चुनौतियां

पश्चात नए शासकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी, देश को एक ऐसा संविधान देना, जिसमें जाति और वर्ग विहीन समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता हो। इसके लिए वयस्क मताधिकार पर आधारित संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय महज 16.6 फीसदी आबादी ही साक्षर थी और 80 फीसदी आबादी गांवों में रहती थी, जहां ढंग की सड़कें और दूसरी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं थीं। इन सबको देखते हुए यह एक क्रांतिकारी फैसला था। उस समय देश खाद्यान्न के मामले में भी आत्मनिर्भर नहीं था। आज यदि भारत आठ-नौ फीसदी विकास दर के लक्ष्य की ओर अग्रसर ह मगर यहां तक पहुंचने के लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा ह सचाई यह ह कि आज भी गरीबी और पिछड़ेपन से भारत पूरी तरह मुक्त नहीं हो सका ह कुछेक अपवादों को छोड़ दें तो, 1970 के दशक के बाद रोजगार की तलाश और रोजगार के नए अवसरों ने देश की सामाजिक संरचना में बड़ा बदलाव लाया ह क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने भी इसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों किस्म का योगदान किया ह वर्ष 2000 में उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ और झारखंड राज्यों की स्थापना के पीछे इन क्षेत्रों का पिछड़ापन, उपेक्षा तो थे ही, मगर कहीं न कहीं इसके पीछे क्षेत्रीय आकांक्षाएं भी थीं।

संविधान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को शिक्षा से जोड़ने और उन्हें सरकारी नौकरी का अवसर देने के लिए आरक्षण की व्यवस्था पहले से की गई थी। इसके साथ ही अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों की पहुंच शिक्षा और रोजगार में बढ़ाने के लिए 1977 में गठित मंडल आयोग ने ओबीसी के लिए 27 फीसदी आरक्षण की सिफारिश की थी। 1990में इसे मंजूर करने के बाद एक नए तरह का आंदोलन देश में भड़क उठा था। सर्वोच्च न्यायालय ने ओबीसी को 27 फीसदी आरक्षण दिए जाने के फैसले को सही ठहराया ह

धर्मनिरपेक्षता

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और उप समुदाय में बंटे भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी कि अपनी एकजुटता को किस तरह अक्षुण्ण बनाए रखे। हमारे संविधान निर्मातओं ने सूझबूझ का परिचय देते हुए भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया। विकासशील देशों में भारत ही ऐसा देश ह, जिसने धर्म निरपेक्षता को सरकार की नीति और कार्यक्रमों का निर्देशक तत्व माना ह भारतीय सेक्यूलरिज्म सिर्फ बौद्धिक अवधारणा नहीं ह और न ही इसकी उत्पत्ति सद्धांतिक और वचारिक ऊहापोह से हुई ह हमारे संविधान में स्पष्ट ह कि देश का अपना कोई धर्म नहीं होगा, बल्कि यहां सभी धर्मों के लोगों को अपने धर्म को मानने की स्वतंत्रता होगी। हर धर्म के लोग एक दूसरे धर्म का सम्मान करें, जिससे सौहार्द और एकता को एक नई ऊर्जा मिल सकेगी।

1.7 भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

समाज सामाजिक संबंधों का जाल ह और समाज की स्थिरता के लिए पुरुषों और महिलाओं के संबंधों की सौहार्दता बुनियादी जरूरत ह किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति को उस समाज के सामाजिक संगठनों की ताकत का महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता ह साहित्य और ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात को स्थापित करते हैं कि वदिक काल में महिलाओं को पुरुषों की तरह सम्मान और बराबरी का दर्जा प्राप्त था। पति व पत्नी दोनों को संपत्ति का संयुक्त रूप से अधिकार प्राप्त था। वस्तुतः प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति स्वतंत्रता, बराबरी और परस्पर सम्मान और समन्वय पर आधारित थी। यहां तक कि बौद्ध काल में भी हमें ऐसी महिलाओं के बारे में पता चलता ह, जिन्हें बौद्ध साहित्य और शिक्षा में उनके योगदान के लिए सम्मान प्राप्त था। अशोक की बहन संघमित्रा को बुद्ध के उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीलंका भेजा गया था। लेकिन मध्य युग के आते-आते महिलाओं के सम्मान में गिरावट आई। परदा प्रथा और सती प्रथा उस दौर के पुरुषवर्चस्ववादी समाज का उदाहरण ह राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और दयानंद सरस्वती जसे समाज सुधारकों ने 19वीं सदी में सती प्रथा के खिलाफ जागरुकता फलाई और महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया। इसी का नतीजा ह कि स्वतंत्रता आंदोलन में भी महिलाओं ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। महात्मा गांधी ने भी स्वंत्रता आंदोलन में महिलाओं को प्रेरित किया था। परदा प्रथा के विरोध के

साथ ही महिलाओं की शिक्षा, कम उम्र की विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए आंदोलन हुए और बाल विवाह का विरोध किया गया। स्वामी विवेकानंद ने भी महिलाओं के सामाजित उत्थान के लिए अत्यंत योगदान दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे संविधान में महिलाओं को बराबरी का हक दिया। संविधान ने लैंगिक समानता को मौलिक अधिकार माना ह। आज स्थिति यह ह कि अनेक राज्यों में पंचायतों में महिलाओं के लिए पचास फीसदी तक पद आरक्षित हैं। हालांकि संसद और विधानसभा में उन्हें अब तक एक तिहाई आरक्षण नहीं मिल सकता ह।

****

1.8 सारांश

इस इकाई में हमने संक्षेप में भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक विकास को समझने की कोशिश की। हमने देखा कि भारतीय समाज की बहुलता और वसुधव कुटंबकम की भावना ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया ह। भाषायी, जातीय और क्षेत्रीय भिन्नताओं के बावजूद भारत की एकता न केवल अक्षुण्ण बना हुई ह, बल्कि इसी विविधता ने उसे विशिष्टता भी प्रदान की ह। हमने भारतीय समाज की बुनावट और उसकी विशेषताओं को जानने के साथ ही देखा कि किस तरह यह समाज रूढ़ियों से जकड़ा रहा ह। स्वंत्रता से पहले और उसके बाद देश के सामने किस तरह की सामाजिक चुनौतियां थीं। सामाजिक आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन का महत्वपूर्ण अंग था। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह था कि हमारे राष्ट्रीय नेता यह अच्छी तरह जानते थे कि सामाजिक चुनौतियों से निपटे बिना स्वंत्रता का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की थी, जिसमें जाति, धर्म, पंथ, अमीर-गरीब या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। उनकी यही भावना हमारे संविधान में परिलक्षित होती ह। संविधान में पिछड़े, उपेक्षित, दलित और आदिवासियों के साथ ही महिलाओं का विशेष ध्यान रखा गया। यह अलग बात ह कि संविधान की मूल भावना के विपरीत राजनीतिक हितों के लिए इन मसलों का दुरुपयोग किया जाता ह।

1.9 शबदावली

समाज- विभिन्न क्षेत्रीय, सामाजिक और आर्थिक समूह अपनी भिन्न सांस्कृतिक परंपरा और विरासत के साथ समाज का निर्माण करते हैं।

जाति- जाति निःसंदेह एक अखिल भारतीय अवधारणा ह, जिसमें विभिन्न जातीय समूह खास तरह का अनुक्रम बनाते हैं, और प्रत्येक समूह का एक या एक से अधिक पारंपरिक पेशा रहा ह।

1.10 संदर्भ ग्रंथ

1. सोशल चेंज इन मॉर्डन इंडिया, एमएन श्रीनिवास, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइ लिमिटेड, नई दिल्ली
2. ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, रोमिला थापर, पेंग्विन बुक्स
3. परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, पूरनचंद्र जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

1.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म निरपेक्षता पर टिप्पणी लिखिए।
2. जजमानी व्यवस्था क्या होती ह, संक्षेप में समझाएं।
3. स्वतंत्र भारत से पूर्व के दो प्रमुख समाज सुधारकों के नाम और उनके योगदान के बारे में बताएं।
4. वसुधैव कुटंबकम से क्या आशय ह।

1.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय समाज की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति पर निबंध लिखिए।
3. जातियां जोड़ने नहीं, तोड़ने का काम करती हैं। विश्लेषण कीजिए।
4. विकास और रोजगार ने भारतीय समाज को किस तरह प्रभावित किया ह? विश्लेषण कीजिए।

5. आज की सामाजिक समस्याएं राजनीति से उपजी हैं। यदि हां, तो विश्लेषण कीजिए।

ईकाई-2

जनसंचार और भारतीय समाज

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भारत में संचारः ऐतिहासिक संदर्भ

2.3 भारतीय समाज और संचार

2.3.1 जनसंचार के आधुनिक साधनों का उद्भव

2.4 भारतीय समाज में मीडिया का प्रभाव

2.4.1 प्रिंट मीडिया

2.4.2 रेडियो

2.4.3 फिल्म

2.4.4 उपग्रह संचार और टीवी

2.4.5 इंटरनेट

2.4.6 संस्कृति के विसरण में मास मीडिया की भूमिका

2.4.7 भारतीय समाज में मीडिया का नकारात्मक प्रभाव

2.5 लोकतंत्र में मास मीडिया

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 संदर्भ ग्रंथ

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस अध्याय में हम जन संचार और भारतीय समाज के अंतरसंबंधों के बारे में जानेंगे। हम इस अध्याय में निम्न बिंदुओं के बारे में जानने का प्रयास करेंगेः

1. भारत में पत्रकारिता अपने विकास के क्रम में किस तरह मिशन से उद्योग बन गई और इसका लोगों पर प्रभाव।
2. भारतीय संदर्भ में जन संचार का महत्व।
3. भारतीय समाज की सचाइयों को सामने लाने में फिल्मों की भूमिका और समाज पर फिल्मों का प्रभाव।
4. भारतीय समाज पर रेडियो और टेलीविजन का प्रभाव।
5. जन संचार के अत्याधुनिक साधन और उनका भारतीय समाज पर प्रभाव।
6. सांस्कृतिक अपसरण में जन संचार की भूमिका।

2.1 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि सूचनाओं, विचारों और व्यवहार का अदान- प्रदान ही संचार ह किसी भी संदेश को दर्शकों, श्रोताओं और पाठकों के व्यापक वर्ग तक पहुंचने के अनेक साधन हैं। किसी भी समाज में जन संचार सूचना के प्रसार का महत्वपूर्ण जरिया हैं। यह सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, सांस्कृतिक विकास और सामाजिक एकता को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता ह

हम पिछले अध्याय में भारतीय समाज के उद्भव और विकास के साथ ही उसकी चुनौतियों के बारे में पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में हम देखेंगे कि मास मीडिया या जन संचार ने किस तरह भारतीय समाज को प्रभावित किया ह समाज के विकास में उसकी क्या भूमिका ह और उसकी वजह से समाज में

किस तरह की नई चुनौतियां सामने आ रही हैं। वास्तव में नई प्रौद्योगिकी ने संचार को पूरी तरह बदलकर रख दिया है, इसका नतीजा है कि दुनिया आज एक गांव में तब्दील हो गई है। दरअसल, ग्लोबलाइजेशन या वैश्वीकरण की अवधारणा को मास मीडिया ने ही अधिक विस्तार दिया है। प्राचीन भारत में मौखिक संदेशों के जरिये संचार होता था। धार्मिक स्थल, शैक्षणिक केंद्र और चौपाल आदि संचार के प्रमुख केंद्र हुआ करते थे। भारत में संचार के आधुनिक साधनों का विकास 18 वीं सदी के अंत में प्रारंभ हुआ जब देश से समाचार पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ था। आज भारतीय प्रेस 30,000 से अधिक समाचारपत्रों के प्रकाशनों के साथ दुनिया के सबसे बड़े केंद्रों में से है। भारत में रेडियो की शुरुआत 1924 में हुई थी। ऑल इंडिया रेडियो (एआइआर) की स्थापना 1936 में की गई थी। भारत में टेलीविजन की शुरुआत 1959 में दूरदर्शन की स्थापना के साथ हुआ। आज पूरे देश में सेटेलाइट और केबल नेटवर्क के जरिये टीवी का जाल बिछ गया है। अगर आज इंटरनेट जन संचार का एक सशक्त माध्यम है। जनसंचार माध्यमों के विस्तार के सामाजिक पहलू के साथ ही इनका एक आर्थिक पहलू भी है। यही कारण है कि इनके संचालन में विज्ञापनों की अहम भूमिका हो गई है। ये दोनों मानो एक-दूसरे के पूरक हो गए हैं।

जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन में किस तरह की भूमिकाएं निभाते हैं इसे हम संचार के दो मॉडल से समझ सकते हैं। संचार के ये दो मुख्य मॉडल हैं- 1. पहला मॉडल इस पर आधारित है कि अभिग्राही (Receiver) जो चीजें ग्रहण करता है, उसे वह कितना आत्मसात कर पाता है। अर्थात उसके आधार पर उसके व्यक्तित्व और व्यवहार में कितना बदलाव आता है। 2. दूसरा मॉडल इस पर आधारित है कि संचारक (Communicator) अभिग्राही को किस तरह और कितना प्रभावित करता है। इस मॉडल में संचारक और अभिग्राही सूचनाओं का अदान-प्रदान करते हैं और दोतरफा संबंध स्थापित करते हैं।

2.2 भारत में संचारः ऐतिहासिक संदर्भ

आज हम संचार को जिस रूप में जानते हैं, उसका जन्म और विकास पश्चिम खासतौर से अमेरिका में हुआ है। प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही संचार के नए साधनों का भी विकास हुआ। संचार के नए साधनों ने संचार को सुगम बना दिया है। अब इंटरनेट और मोबाइल फोन के जरिये दुनिया के किन्हीं

भी दो हिस्सों में पल भर में संपर्क स्थापित किया जा सकता है। इसके अलावा टेलीविजन और रेडियो दुनियाभर में खबरें और सूचनाएं प्रसारित करते ही हैं। लेकिन यह भी सच है कि संचार की अवधारणा नई नहीं है। इसका संबंध मनुष्य के अस्तित्व में आने के समय से है। जहां तक भारतीय संदर्भ की बात है, तो उपनिषद, गीता, नाट्य शास्त्र जैसे ग्रंथों के साथ ही संस्कृत साहित्य, भक्तिकाल की रचनाएं, संतों और सूफियों के विचार और उनकी रचनाएं और विचार संचार के महत्वपूर्ण साधन रहे हैं और आज भी यह विचारों और सिद्धांतों को प्रसारित करने का काम कर रहे हैं। छापाखानों के अविष्कार से पहले भी विचारों और शब्दों को संरक्षित रखने का तरीका मनुष्य ने ईजाद कर लिया था। ताड़ के पत्तों और शिलालेखों में दर्ज बातें संचार के प्राचीनतम साधन कहे जा सकते हैं।

2.2.1 संचार और भारतीय दर्शन

कुछ विद्वानों का मानना है कि भारतीय परंपरा में संचार पर शायद ही कोई विचार उपलब्ध है। जो लोग ऐसा कहते हैं उन्हें भारतीय संस्कृति और परंपरा का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। असल में यह धारणा इसलिए बनी, क्योंकि संचार शब्द के प्रयोग का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। संभवतः इसलिए प्राचीन भारतीय साहित्य में इस विषय पर अलग से कुछ नहीं मिलता, लेकिन संचार की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। जैसा कि हम सब जानते हैं संचार निर्वात या शून्य में नहीं हो सकता। संचार हमारे सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न हिस्सा है। हम देख सकते हैं कि संचार के ये मूल्य आज भी महत्वपूर्ण हैं, इससे हमारे अनेकता में एकता के ताने-बाने को मजबूती ही मिली है। यदि देश के सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को छेड़ा गया, तो यह ताना-बाना बिखर सकता है। यही भारतीय दर्शन का सार भी है।

2.2.2 जाति व्यवस्था का संचार पर प्रभाव

जाति व्यवस्था ने विशेष रूप से ग्रामीण भारत में संचार के स्वरूपों (Patterns) को प्रभावित किया है। ग्रामीण समुदाय में गहरे तक पैठी जाति व्यवस्था की वर्गीकरण और पदानुक्रम की प्रवृत्तियों के कारण एक ही जाति या वर्ग के लोगों के बीच कहीं अधिक संचार होता है। ग्रामीण क्षेत्रों की अनेक समस्याएं भी इसी जाति व्यवस्था के कारण उपजी हैं, जिसमें संचार की महत्वपूर्ण भूमिका है। हालांकि यह स्थिति अब बदल रही है। इसमें लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास का योगदान है।

इसके साथ ही टीवी रेडियो, समाचार पत्र के साथ ही इंटरनेट और मोबाइल फोन जैसे जन संचार के आधुनिक साधनों ने जाति व्यवस्था को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

2.3 भारतीय समाज और संचार

भारतीय समाज को प्रायः एकता में अनेकता का प्रतिरूप कहा जाता है। इसके अलावा इसके गांवों को स्वतंत्र गणराज्य भी कहा जाता रहा है। प्राचीन भारत में उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में अनेक संस्कृतियों का विकास हुआ। ये संस्कृतियां एक दूसरे से स्वतंत्र थीं और इन्होंने एक दूसरे को प्रेरित और प्रभावित भी किया। उस समय स्थापित मौखिक परंपरा से इनका विस्तार हुआ। घुम्मकड़ संतों और सूफियों ने संदेशों को प्रसारित किया। उन्होंने रामायण और महाभारत के साथ ही अन्य धर्म ग्रंथों के संदेशों का प्रचार किया और उनमें दी गई बातों की तत्कालीन समाज की सच्चाइयों के अनुरूप व्याख्या की। सामुदायिक स्तर पर भी समाज के विभिन्न वर्गों को संचार ने आपस से जोड़ा।

2.3.1 जनसंचार के आधुनिक साधनों का उद्भव

भारत में शुरुआती स्तर पर प्रिंट मीडिया जन संचार का साधन था। उसके बाद रेडियो और फिर टेलीविजन के आगमन से जन संचार का तरीका बदल गया। इंटरनेट और मोबाइल फोनों ने जन संचार को सहज और सुलभ बना दिया है। यही मायने में जन संचार के इन अत्याधुनिक साधनों ने समाज में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है।

2.4 भारतीय समाज में मीडिया का प्रभाव

जन संचार ने किसी भी दूसरे समाज की तरह भारतीय समाज में गहरा असर डाला है। इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों असर हुए हैं। इसने सामाजिक आर्थिक उत्थान में मदद की है, तो इसकी वजह से कुछ सामाजिक विकृतियां भी पनपी हैं। जन संचार का पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों पर भी असर पड़ा है। समकालीन भारत में हम जन संचार माध्यमों का प्रभाव भारत के स्वंतत्रता आंदोलन से लेकर आज तक देख सकते हैं। भारत का स्वंत्रता का आंदोलन एक व्यापक

सामाजिक आंदोलन भी था, जिसमें समाज के हर तबके ने हिस्से लिया था। स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद एक नए भारत के निर्माण में भी जन संचार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए यदि स्वंत्रता प्राप्ति के समय भारत में औसत उम्र 40 वर्ष, साक्षरता की दर 12 फीसदी थी और आज यह बढ़कर क्रमशः 68 वर्ष और 75 फीसदी से अधिक ह, तो इसमें जन संचार की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। जन संचार सामाजिक ताने-बाने को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तरह से प्रभावित कर रहा ह

2.4.1 प्रिंट मीडिया

औपनिवेशिक भारत में कलकत्ता, मद्रास और उसके बाद बॉम्बे प्रिंट मीडिया के प्रमुख केंद्र थे। इन केंद्रों से निकलने वाले समाचार पत्रों ने स्वंतत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाया। राष्ट्रीय आंदोलन के आगे बढ़ने के साथ ही दिल्ली, लाहौर, लखनऊ और कानपुर जसे केंद्रों से भी अखबारों और पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। जलियांवाला बाग नरसंहार, गांधी जी का असहयोग आंदोलन, और नागरिक अवज्ञा आंदोलन प्रेस की वजह से ही पूरे देश को उद्वेलित कर सके और जोड़ सके। इसी तरह गांधी-इरविन समझौता और गवर्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 को उस वक्त के अखबारों ने अपनी सुर्खियां बनाई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रिंट मीडिया की भूमिका भी बदल गई। स्वंत्रता आंदोलन में मीडिया जहां मिशन की तरह काम कर रहा था, स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद इसने एक व्यवसाय का रूप ले लिया। लेकिन इसका यह मतलब नहीं ह कि समाचार पत्रों या पत्रिकाओं ने अपने सामाजिक सरोकारों से नाता तोड़ लिया। भाषायी पत्रकारिता के विकास से सामाजिक परिवर्तन को भी गति मिली ह समाचार पत्रों ने सामाजिक विसंगतियों को सामने लाया ह और समाज के विभिन्न तबकों और सरकार के बीच सेतू का काम किया ह इससे सामाजिक चिंतन और दर्शन दोनों प्रभावित हुए हैं।

हिंदी भाषी क्षेत्रों की ही बात करें, तो हिंदी प्रदेशों में इस बदलाव में अमर उजाला, दनिक जागरण, दनिक भास्कर, आज, प्रभात खबर, जसे अखबार अपने क्षेत्रीय और जिला स्तर के संस्करणों के जरिये बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। समाचार पत्र और पत्रिकाओं में दी जाने वाली खबरों और अन्य सामग्रियों में समाज की विसंगतियां देखी जा सकती हैं। पत्र और पत्रिकाएं सिर्फ सूचना प्रदान करने

का माध्यम नहीं हैं, बल्कि यह सामाजिक संरचना, जीवनशैली, खानपान, पहनावा और सोच को भी प्रभावित कर रहे हैं। इसके अलावा सरकारी योजनाओं को लोगों तक पहुंचाने का माध्यम भी हैं समाचार पत्र और पत्रिकाएं। 1980 के दशक के बाद भारतीय समाचार पत्रों में स्वरूप और सामग्री के स्तर पर काफी बदलाव आया है। वरना एक समय था, जब प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बयान ही अखबारों की सुर्खियां बन जाते थे। मगर अब व्यापक सामाजिक सरोकारों वाली खबरों को प्रमुखता दी जाती है। इसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह की खबरें होती हैं।

2.4.2 रेडियो

टेलीविजन के आगमन से पूर्व रेडियो भारत में सूचनाओं और समाचार प्राप्त करने का बड़ा माध्यम थे। सरकारी नियंत्रण में होने के बावजूद रेडियो ने आकाशवाणी के जरिये भारतीय समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाया है। आज स्वायत्त संस्था प्रसार भारती प्रसारण के अधीन काम करते हुए आकाशवाणी से 24 भाषाओं और 146 बोलियों में रेडियो से कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इनमें सामाजिक विषयों से लेकर खेती किसानी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक का प्रसारण किया जाता है। इसके अलावा बीबीसी, जर्मन रेडियो, वाइस ऑफ अमेरिका जैसी विदेशी प्रसारणों ने भी भारतीय समाज का परिचय बाहरी समाज से कराया है। वास्तव में रेडियो जन संचार का सबसे सस्ता और सबसे सुलभ माध्यम है। भारत में एफएम प्रसारण की अनुमति मिलने के बाद रेडियो को नया जीवन मिला है, हालांकि एफएम चैनलों के जरिये अभी समाचारों के प्रसारण की अनुमति नहीं है। मगर सामुदायिक रेडियो के जरिये विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में एक बड़ा बदलाव आया है, जहां शिक्षा और सामाजिक जागरुकता फैलाने के साथ ही अंधविश्वास के खिलाफ अभियान भी छेड़ा गया है। सामुदायिक रेडियो खेती-किसानी संबंधी जानकारियों के प्रसारण का भी जरिया हैं।

2.4.3 फिल्म

फिल्में जन संचार का एक सशक्त माध्यम हैं। भारत में पहली बार 7 जुलाई, 1896 को वाट्सन होटल मुंबई में फिल्म दिखाई गई थी। सिनेमेटोग्राफर ल्यूमरे भाइयों ने इसे अंजाम दिया था। चुनींदा दर्शकों को वहां द सी बाथ, अराइवल ऑफ ए ट्रेन, और लेडिज ऑन द व्हील जैसी लघु फिल्में दिखाई गई थीं। लेकिन पहली भारतीय फिल्म 1913 में ही तैयार हो सकी, जब दादा साहब फाल्के ने

राजा हरिश्चंद्र बनाई थी। चार रील यानी 37,00 फीट लंबी यह मूक फिल्म थी। इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत में सिनेमा के अब सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। फिल्में सामाजिक विसंगतियों, बुराइयों और अच्छाइयों को परदे पर उतार ही नहीं रही हैं, समाज को नई दिशा भी दे रही हैं। सच पूछा जाए तो फिल्में और समाज आज एक दूसरे के पूरक हो गए हैं। बेशक, फिल्में भारत में मनोरंजन का सबसे बड़ा माध्यम हैं, लेकिन फिल्मों की वजह से सामाजिक संस्कार भी बदले हैं। फिल्मों में समाज की सकरात्मक और नकारात्मक दोनों प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। फिल्मों की लोकप्रियता का यह हाल ह कि भारतीय फिल्म उद्योग दुनिया के विशालतम फिल्म उद्योग में गिना जाता ह हिंदी, बांग्ला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, असमिया, उडिया, सहित अन्य भारतीय भाषाओं में हर साल हजारों फिल्में बनाई जाती हैं। इनमें सिर्फ मनोरंजन को ही केंद्र में नहीं रखा जाता, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक मसलों को भी सामने लाने के प्रयास किए जाते हैं।

2.4.4 उपग्रह संचार और टेलीविजन

भारत में आज जितने टेलीविजन चैनलों के जरिये प्रसारण हो रहा ह, उसे देखकर यह अंदाजा लगाना मुश्किल ह कि एक समय ऐसा भी था, जब यह बहस छिड़ी थी कि क्या भारत जैसा गरीब देश टेलीविजन जैसे माध्यम का संचालन कर सकता ह भारत में 15 सितंबर, 1959 को पहली बार टेलीविजन पर कार्यक्रम प्रसारित किया गया था। यह सरकारी प्रसारण था, मगर पिछले पांच-छह दशकों में टेलीविजन और सैटेलाइट से होने वाले प्रसारण के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई ह 26, जनवरी, 1967 को दूरदर्शन से पहली बार ग्रामीणों के लिए कृषि दर्शन कार्यक्रम का प्रसारण शुरू किया गया था। शुरुआत में दूरदर्शन से एक से दो घंटे के कार्यक्रम ही प्रसारित किए जाते थे। मगर आज चौबीसों घंटे टीवी चैनलों से प्रसारण हो रहा ह जनसंचार के क्षेत्र में टेलीविजन ने सचमुच क्रांति ला दी ह अब टेलीविजन न तो सरकारी भोंपू ह और न ही नब्बे के दशक का इडियट बॉक्स। टेलीविजन सामाजिक परिवर्तन में एक बड़ी भूमिका निभा रहा ह हालांकि इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि गला काट प्रतिस्पर्धा ने टेलीविजन चैनलों की गुणवत्ता को प्रभावित किया ह दूसरा पहलू यह भी ह कि उपग्रह से होने वाले प्रसारणों के कारण दर्शकों के पास आज विकल्पों की कमी नहीं ह

2.4.5 इंटरनेट

इंटरनेट ने जन संचार की परिभाषा ही बदल दी ह इसके जरिये दुनिया के सुदूर छोरों पर बैठे लोग एक दूसरे से संवाद कर सकते हैं और सूचनाओं का पलभर में अदान-प्रदान कर सकते हैं। सही मायने में इंटरनेट को दुनिया को कंप्यूटर और मोबाइल फोन में बदल कर दिया ह भारत में 14 अगस्त, 1995 को पहली बार वीएसएनएल ने छह शहरों में इंटरनेट की शुरुआत की थी। इन 17-18 वर्षों में इंटरनेट का इतना विस्तार हो चुका ह कि इसने एक नया सामाजिक विन्यास रच दिया ह इसके जरिये अब शादियां तक तय हो रही हैं। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने हमारे आसपास एक नया संसार ही रच दिया ह

2.4.6 संस्कृति के विसरण में मास मीडिया की भूमिका

विसरण (diffusion) के जरिये हम सांस्कृतिक विशेषताओं के दूसरे समाजों और क्षेत्रों में विस्तार को समझ सकते हैं। संचार माध्यमों ने खानपान, पहनावा, व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया ह इसी का नतीजा ह कि अब उत्तर भारत के व्यंजन दक्षिण भारत में और वहां के व्यंजन उत्तर भारत में भी आम हो गए हैं। सिनेमा और टेलीविजन ने इस cultural diffusion में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ह पिछले सदी के अंतिम दशकों ने रामायण और महाभारत जैसी पौराणिक कृतियों को घर-घर तक पहुंचाने का काम किया था, और इसमें जाति या समुदाय का कोई भेद नहीं था। सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन जैसे मास मीडिया के साधनों के कारण न केवल हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ी ह, बल्कि इसने हिंदी को बाजार से भी जोड़ दिया ह इसका एक नतीजा यह हुआ कि गैर हिंदीभाषी क्षेत्रों में भी हिंदी बोली और पढ़ी जा रही ह और हिंदी फिल्में और कार्यक्रम देखे-सुने जा रहे हैं।

2.4.7 भारतीय समाज में मीडिया के नकारात्मक प्रभाव

आज हम भले ही 21 वीं सदी में रह रहे ह, लेकिन अंधविश्वास से हमारा नाता खत्म नहीं हुआ ह इसे बढ़ाने में जन संचार माध्यमों का बड़ा योगदान ह कई बार जन संचार के माध्यम चाहे वह समाचार पत्र हों, टेलीविजन चैनल हों या रेडियो किसी घटना की वैज्ञानिक पड़ताल किए बिना ही

उसे बढ़ाचढ़ा कर पेश करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व पूरे देश में गणेश भगवान के दूध पीने की घटना या फिर दिल्ली में मंकी मैन के आतंक की अफवाह ऐसी ही घटनाएं थीं, जिनमें तथ्यों की पड़ताल किए बिना जन संचार माध्यमों ने लापरवाही के साथ खबरें प्रसारित और प्रकाशित की थीं।

हम जब टीवी पर कोई धारावाहिक या कोई अन्य कार्यक्रम देखते हैं या थियेटर में कोई फिल्म देखते हैं, तब बहुत-सी तस्वीरें हमारे जेहन में देर तक बनी रहती हैं। इनमें हिंसा से संबंधित तस्वीरें भी होती हैं। ऐसे कार्यक्रम या तस्वीरें विशेषरूप से बच्चों के मानसिक विकास में बाधक बन जाते हैं। अपराध की कुछेक घटनाओं में किसी फिल्म विशेष की कहानी से प्रभावित होकर अपराध को अंजाम देने की बातें भी सामने आई हैं। एक अध्ययन के मुताबिक सालभर में एक बच्चा तकरीबन 40,000 विज्ञापन देख डालता है।

जन संचार माध्यमों ने सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया है, जिसका असर पारिवारिक जीवन पर भी पड़ रहा है। फिल्मों और धारावाहिकों में दिखाए जाने वाले पात्रों और उसके कंटेंट से दर्शक अपने को जोड़ने लगते हैं। और उसी का अनुसरण भी करने लगते हैं।

2.5 लोकतंत्र में मास मीडिया

समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन जैसे जनसंचार के माध्यम सरकार और जनता के बीच सेतू का काम करते हैं। उदाहरण के लिए यदि सरकार पेट्रोल या रसोई गैस के दाम बढ़ाने या घटाने का फैसला करती है, तो इसकी जानकारी आम जनता तक जनसंचार माध्यमों के जरिये ही पहुंचती है। मीडिया न केवल लोगों तक सूचनाएं पहुंचाता है, बल्कि वह उन्हें जागरुक भी करता है।

मीडिया लोगो के सामान्य व्यवहार, उनकी आदतें और उनके दृष्टिकोण में बदलाव लाने का काम करता है। मीडिया गलत धारणाओं को बदलने का काम भी करता है। उदाहरण के लिए कुष्ठ रोग और एचआईवी तथा एड्स जैसी बीमारियों के बारे में बहुत सी भ्रांतियां फैली हुई है, जिन्हें जनसंचार माध्यमों के जरिये दूर करने का प्रयास किया जाता है। विज्ञापनों, नाटकों और लघु फिल्मों तथा लेखों के माध्यम से इन बीमारियों के संबंध में जागरुकता फैलाई जा रही है। सबसे ताजा उदाहरण पोलियो

की बीमारी से संबंधित है। बीते एक साल से देश में यदि पोलियो प्रभावित एक भी मामला सामने नहीं आया है, तो इसके पीछे जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में पोलियो का आखिरी मामला 13, जनवरी 2011 को पश्चिम बंगाल में सामने आया था, जब वहां एक बच्चा इसके वायरस से ग्रस्त पाया गया था। उसके बाद से पूरे देश में एक भी नया मामला सामने नहीं आया है। पोलियो को खत्म करने में पूरे देश में चलाए जा रहे पल्स पोलियो अभियान की महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसे जन संचार माध्यमों के जरिये ही सार्थक किया जा सका है।

मीडिया ने जनमत को भी जगाने का काम किया है। हाल के समय भ्रष्टाचार के खिलाफ जो माहौल बना है, उसमें मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेषरूप से गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे के आंदोलन को पूरे देश भर में जो समर्थन मिला, उसमें मीडिया की भूमिका को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। यह घटना इस बात का उदाहरण है कि जन संचार माध्यम में किस तरह किसी विषय पर नए दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

2.6 सारांश

इस इकाई में हमने संचार की भारतीय अवधारणा को समझने की कोशिश की। भारतीय दर्शन में संचार का इतिहास अत्यंत पुराना है। प्रौद्योगिकी के विस्तार से जन संचार का तरीका भी बदलता चला गया। भारत में जन संचार की आधुनिक अवधारणा प्रिंट मीडिया के आगमन से देखी जा सकती है। इसके बाद रेडियो, टेलीविजन और अब इंटरनेट तथा मोबाइल फोन ने जन संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है। भारतीय समाज और जन संचार के अटूट संबंधों को हमने समझने की कोशिश की। हमने देखा कि जन संचार के अत्याधुनिक साधनों का समाज पर कैसा असर पड़ रहा है, और इस पर भी विचार किया कि इससे भारतीय संचार व्यवस्था किस तरह प्रभावित हो रही है। भारतीय संचार की जड़ें प्राचीन ग्रंथों और वेदों में हैं। हमने समझने की कोशिश की कि कैसे संचार ने भारतीय मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा समग्रता में देखें तो लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

2.7 शब्दावली

संचार - सूचनाओं, विचारों और व्यवहार का आपस में आदान- प्रदान ही संचार ह□

संस्कृति - किसी जाति के धर्म, साहित्य, रीति-रिवाज और आदर्श के समुच्चय का नाम संस्कृति ह□

2.8 संदर्भ ग्रंथ

1. मास मीडिया टुडे, इन द इंडियन कॉटेंक्ट, सुबीर घोष, प्रोफाइल पब्लिशर, कोलकाता
2. इंडियन थ्योरी ऑफ मास कम्युनिकेशन, आई पी तिवारी, आईआईएमसी, नई दिल्ली
3. भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
4. Media and the Third World, Dr. Mankakar.

2.9 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. प्रसार भारती क्या ह, संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
2. अंधविश्वास को रोकने में जनसंचार माध्यमों की क्या भूमिका हो सकती ह□
3. इंटरनेट के सामाजिक प्रभावों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

दीर्घ स्तरीय प्रश्न:

1. जाति व्यवस्था को जनसंचार ने किस तरह प्रभावित किया ह, समझाइये?
2. जनसंचार ने सामाजिक क्रांति ला दी ह, क्या आप इस वक्तव्य से सहमत ह□ समझाइये
3. संस्कृतियों के विसरण में जनसंचार की भूमिका को रेखांकित कीजिए।
4. टीवी चैनल भारतीय समाज को कितना प्रभावित कर रहे हैं।

ईकाई-3

मानवाधिकार एवं मीडिया

ईकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मानवाधिकार क्या ह□

3.4 मानवाधिकार और मीडिया

3.4.1 फिल्म और मानवाधिकार

3.4.2 टेलीविजन और मानवाधिकार

3.4.3 रेडियो और मानवाधिकार

3.4.4 प्रिंट मीडिया और मानवाधिकार

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास प्रश्न

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 शब्दावली

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

ज्यों-ज्यों मानव तरक्की कर रहा ह, मानव अधिकार भी जरूरी हो रहे हैं. मानव के विकास में मानवाधिकारों की भूमिका महत्वपूर्ण ह। आज के मीडिया के लिए मानवाधिकारों को गंभीरता से लेना आवश्यक हो गया ह।

- इस इकाई में मानवाधिकार के बारे में छात्रों को जानकारी दी गई ह। छात्रों को समझाने की कोशिश की गई ह कि मानवाधिकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास व समाज में उसे बनाये रखने में कितने महत्वपूर्ण हैं।
- मानवाधिकार और मीडिया का सम्बन्ध तथा मानवाधिकारों के प्रति समाज और व्यक्ति को सजग करने में मीडिया की क्या भूमिका होती ह, इकाई में इसकी पूरी जानकारी दी गई ह।

3.2 उद्देश्य

हम अच्छी तरह से जानते हैं कि समाज में संवाद कायम करने तथा हमे अपने अधिकारों के प्रति सजग करने में मीडिया की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती ह। मीडिया की इस भूमिका का जिक्र इस इकाई में किया गया ह।

इस इकाई से आप जान सकेंगे कि-

- मीडिया किस तरह किसी व्यक्ति को उसके अधिकारों के उपयोग के लिए प्रेरित करता ह।
- मानवाधिकारों के प्रति पाठक जागरूक हों, इसलिए इनका अध्ययन जरूरी ह। छात्रों में इनके प्रति संवेदनशीलता जागे और यह पता चले कि इसमें इलेक्ट्रॉनिक तथा प्रिंट मीडिया की क्या भूमिका हो सकती ह।

3.3 मानवाधिकार क्या है

मानव जीवन की उत्पत्ति के साथ ही मानवाधिकार की अवधारणा अस्तित्व में आ गई थी। मानवधिकार वे अधिकार हैं जो मानव एवं उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं। मूलतः यह व्यक्ति की गरिमा से संबधित हैं। व्यक्ति का मान उसके मानव होने के कारण सभी के बराबबर ह, वह चाहे किसी भी राष्ट्र, धर्म, लिंग, जाति, उम्र से संबधित हो। इसका मूल आधार ह, हर व्यक्ति की अपनी एक गरिमा होती ह यही सभ्य समाज की पहचान ह यह तथ्य ह कि मानव समाज में कई स्तरों पर विषमताएं मौजूद हैं चाहे वह भाषा, वर्ण या लिंग के आधार पर हो, इनके बावजूद सभी समाजों में व्यक्ति को कुछ मूलभूत अधिकार भी प्राप्त हैं. यही अधिकार मानवाधिकार ह जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए। - जेसी जौहरी

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं।

आरजे विसेट के अनुसार- मानवाधिकार संसार के समस्त व्यक्तियों को प्राप्त हैं क्योंकि यह स्वयं में जन्मजात हैं, वे बाद में नहीं दिए जा सकते, वे खरीद या संविदावादी प्रक्रिया से मुक्त होते हैं।

डेविड सेलबाई के अनुसार, मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो मनुष्य के जीवन, उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं।

प्लानो एवं ओल्टान ने कहा, वस्तुतः मानवाधिकारों की सभी परिभाषाएं मानवीय गरिमा व उसके व्यक्तित्व से संबन्धित हैं और मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिये ये नितांत आवश्यक हैं, जिससे वह समाज में अपने आप को बनाये रखे।

डॉ. मुकुल श्रीवास्तव के अनुसार, वास्तव में मानवाधिकार ऐसे मानक हैं जो सभ्यता की शुरूआत में प्राकृतिक अधिकार के रूप में जाने जाते थे तथा एक व्यक्ति व समाज के बेहतर विकास के लिये जिनकी नितांत आवश्यकता होती ह राज्य की सर्वोच्च सत्ता द्वारा ये सुरक्षित रखे जाते हैं और राज्य के न्यायालय इनका समुचित पालन सुनिश्चित करते हैं। मूलतः मानवाधिकार अत्यधिक समय तक एक सम्प्रभु राज्य के अत्याचारों से भयभीत जूरियों की अपील मात्र नहीं हैं वरन् एक प्रभावी साधन हैं। राज्य की अंतहीन शक्ति को बांधने का इस मान्यता के साथ कि न्यायालय स्वतंत्र

और सक्रिय ह। इस प्रकार लिखित संविधन में मानवाधिकार की गारंटी का तात्पर्य यह सुनिश्चित करना ह कि राज्य की कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों में से जो भी मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें न्यायालय द्वारा दंडित किया जाना चाहिए, क्योंकि संविधान ही मूलभूत विधि ह।

मानवाधिकार का सार्वभौम घोषणापत्र

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बाद उसकी आर्थिक और सामाजिक परिषद् की पहली बठक में मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग का काम 10 जून सन् 1948 को समाप्त हो गया और 10 दिसंबर सन् 1948 को **मानव अधिकार का सार्वभौम घोषणापत्र** संयुक्त राष्ट्र महासभा में निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपनी घोषणा में कहा ह कि सभी देशों और सभी राष्ट्रों में प्रत्येक मनुष्य और समाज की प्रत्येक संस्था के अधिकारों और उनकी प्रतिष्ठा का सम्मान समान आधार पर किया जाएगा।

मानव अधिकार के सार्वभौम घोषणापत्र को ध्यान में रखकर सभी देशों और सभी स्थानों में सभी मनुष्यों के लिए इन अधिकारों की व्यवस्था राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आधार पर की जाएगी। इनका प्रचार और प्रसार किया जाएगा।

भारत में मानवाधिकार

देश के विशाल आकार और विविधता, विकासशील तथा संप्रभुता संपन्न धर्म-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा, तथा एक भूतपूर्व औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप **भारत में मानवाधिकारों** की परिस्थिति एक प्रकार से जटिल हो गई ह। भारत का संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता ह, जिसमें धर्म की स्वतंत्रता भी अंतर्भुक्त ह। संविधान की धाराओं में बोलने की आजादी के साथ-साथ कार्यपालिका और न्यायपालिका का विभाजन तथा देश के अन्दर एवं बाहर आने-जाने की भी आजादी दी गई ह।

अक्सर माना जाता ह, विशेषकर मानवाधिकार संगठनों और कार्यकर्ताओं के द्वारा, कि दलित अथवा अछूत जाति के सदस्य पीड़ित हुए हैं एवं लगातार भेदभाव झेलते रहे हैं. हालांकि मानवाधिकार की समस्याएं भारत में मौजूद हैं, फिर भी इस देश को दक्षिण एशिया के दूसरे देशों की तरह आमतौर पर मानवाधिकारों को लेकर चिंता का विषय नहीं माना जाता ह

भारत में मानवाधिकारों से संबंधित घटनाएं

- 1928- सती प्रथा पर रोक. राजा राममोहन राय के ब्रह्मो समाज जसे हिन्दू सुधारवादी आंदोलनों के वर्षों प्रचार के पश्चात गवर्नर जनरल विलियम बेंटिंक ने औपचारिक रूप से सती प्रथा पर रोक लगाई.
- - 1929बालविवाह निषेध अधिनियम- 14 वर्ष से कम की आयु में विवाह पर रोक लगा दी गयी.
- - 1947भारत ने ब्रिटिश राज से राजनीतिक आजादी हासिल की.
- - 1950भारत के संविधान ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के साथ संप्रभुता संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की. नागरिक को मौलिक अधिकारों की प्राप्ति.
- - 1952आपराधिक जनजाति अधिनियम को पूर्ववर्ती "आपराधिक जनजातियों को "अनधिसूचित के रूप में वर्गीकृत किया गया तथा परीक्षणाधीन कवियों का अधिनियम1952) पारित हुआ. हिन्दुओं से संबंधित परिवार के कानून में सुधार ने हिन्दू महिलाओं को अधिक अधिकार प्रदान किए.
- - 1958सशस्त्र बल अधिनियम (विशेष अधिकार)
- - 1973भारत का उच्चतम न्यायालय *केशवानन्द भारती के मामले* में यह कानून लागू करता ह कि संविधान की मौलिक संरचना कई मौलिक अधिकारों सहित संवधानिक संशोधन के द्वारा) .अपरिवर्तनीय ह
- -1975भारत में आपात काल की स्थिति.अधिकारों के व्यापक उल्लंघन की घटनाएं घटीं-
- - 1978*मेनका गांधी बनाम भारत संघ* के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कानून लागू किया कि आपातके अधिकार को निलंबित नहीं किया जा (जीने)के तहत जीवन 21स्थिति में भी अनुच्छेद - .सकता
- -1978जम्मू और कश्मीर जन सुरक्षा अधिनियम, 1978
- -1984 में ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद सिख विरोधी दंगे

- -1985शाहबानो मामला जिसमें उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा मुसलिम महिलाओं के अधिकार को मान्यता दी जिसने उच्चतम न्यायालय के फ□सले के विरोध में चिनगारी भड़का दी। राजीव गांधी की सरकार ने मुस्लिम महिला .पारित किया 1986अधिनियम (तलाक पर अधिकार का संरक्षण)
- - 1989*अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम (अत्याचार निवारण),पारित 1989 . किया गया*
- -1989वर्तमान -कश्मीरी बगावत ने कश्मीरी पंडितों का नस्ली तौर पर सफाया, हिन्दू मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर देना, हिन्दुओं और सिखों की हत्या तथा विदेशी पर्यटकों और सरकारी कार्यकर्ताओं का अपहरण देखा.
- - 1992संविधानिक संशोधन ने स्थानीय स्व(पंचायती राज)शासन - की स्थापना तीसरे तले के (दर्जे) साथ .तिहाई सीट आरक्षित की गई-शासन के ग्रामीण स्तर पर की गई जिसमें महिलाओं के लिए एक .ही साथ अनुसूचित जातियों के लिए प्रावधान किए गए
- - 1992हिन्दू जनसमूह द्वारा-बाबरी मस्जिद ध्वस्त कर दिया गया, परिणामस्वरूप देश भर में दंगे हुए.
- - 1993मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत *राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग* की स्थापना की गई.
- - 2001उच्चतम न्यायालय ने भोजन का अधिकार लागू करने के लिए व्यापक आदेश जारी किए .
- - 2002गुजरात में हिंसा, मुख्य रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यक को लक्ष्य कर, कई लोगों की जाने गईं.
- - 2005एक *सशक्त सूचना का अधिकार अधिनियम* पारित हुआ ताकि सार्वजनिक अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में संघटित सूचना तक नागरिक की पहुंच हो सके.
- - 2005*राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए)* रोजगार की सार्वभौमिक गारंटी प्रदान करता ह□
- - 2006उच्चतम न्यायालय भारतीय पुलिस के अपयार्प्त मानवाधिकारों के प्रतिक्रिया स्वरूप पुलिस सुधार के आदेश जारी किए।

3.4 मानवाधिकार और मीडिया

मीडिया मानव अधिकारों की रक्षा के लिए जरूरी ह। हालांकि, समाचारपत्रों में मानवाधिकारों के हनन के नाम पर सिर्फ़ पुलिस हिरासत और जेल हिरासत में होने वाली गतिविधियों तथा मौतों की ख़बरें ही प्रकाशित की जाती हैं। परंतु, सामाजिक घटनाओं को अब भी वह (मानवाधिकार हनन) स्थान नहीं मिल पा रहा ह, जो उसे मिलना चाहिए। उदाहरणस्वरूप देश के समक्ष बाटला हाऊस मुठभेड़ काफी सुर्खियों में रहा। तत्कालीन मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति एसराजेन्द्र . बाबू ने कहा कि''मीडिया केवल सामाजिक मुद्दों, गरीबी से उत्पन्न समस्याओं तथा कुपोषण से होने वाली मौतों पर ज्यादा ध्यान दे न कि मुठभेड़ों और पुलिस हिरासत में हुई मौतों को अधिक अहमियत दें। मीडिया को आज अपने अधिकारों से वंचित लोगों के अधिकारों की रक्षा के मुद्दों पर अधिक ध्यान देने की जरूरत ह।'

हमें याद रखना होगा कि जनमाध्यम ही ऐसा एकमात्र माध्यम ह जो समाज और सरकार के पहरूए हैं। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक लोग मानवाधिकर शब्द से ही परिचित नहीं थे, किन्तु आज स्थिति एकदम भिन्न ह। भले ही लोग इसकी पूरी अवधारणा से परिचित न हों किन्तु उन्हें कम से कम इतनी जानकारी तो अवश्य हो गयी ह कि "मानवाधिकार" अब एक अछूता विषय नहीं रह गया ह।

3.4.1 फिल्म और मानवाधिकार

फिल्म एक ऐसा जनमाध्यम ह, जिसका समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता ह। भारत में बोलने वाली फिल्मों का युग 1931 ई0 में "आलम आरा" से शुरू होता ह। मानवाधिकारों का सर्वाभौम घोषणा पत्र बहुत बाद में विश्वपटल पर आया। अतः यह सोचना कि मानवाधिकारों का विषय उस समय की फिल्मों में भी परिलक्षित था, गलत होगा। किन्तु हम यह नहीं कर सकते हैं कि मानवाधिकारों की घोषणा के पश्चात् ही फिल्मकारों का ध्यान इस ओर गया। यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा। भले ही मानवाधिकार शब्द की अवधारणा को उस समय तक ठीक तरह से परिभाषित नहीं किया गया था। स्वाक् फिल्मों के युग की शुरूआत से ही ऐसे अनेक विषयों को भारतीय फिल्मकारों ने अपने कथानक का विषय बनाया जो मानवाधिकारों की अभिव्यक्ति करते थे। जैसे 1932 ई0 में बनी "चंडीदास" तथा 1936 में निर्मित 'अछूत कन्या' क्रमशः न्यू थियेटर तथा बाम्बे टाकीज ने बनायी। उपरोक्त दोनों फिल्में अस्पृश्यता तथा छुआछूत जैसे ज्वलंत विषयों को ध्यान में रखकर बनायी गयी

थीं। उल्लेखनीय ह कि ये फिल्में उस दौर में बनीं थी, जबकि इन विषयों पर सार्वजनिक रूप से बहस करना स्वीकार नहीं किया जाता था।

'साहूकारी पाश', 'टाइपिस्ट गर्ल' भारतीय महाजनी या साहूकारी व्यवस्था, बाबूराव पेंटर द्वारा महाराष्ट्र फिल्म कंपनी के बन्द तले बनायी गयी थी। इस फिल्म में बड़ी निर्भीकता व ईमानदारी से भारतीय साहूकारों के क्रूर चरित्र का चित्रण किया गया था कि वे किस तरह से किसानों के खून को चूसकर अपनी तिजोरियां भर रहे थे। कृषकों की पीढ़ी दर पीढ़ी को अपने साहूकारी जाल में फंसाते जा रहे थे। फिल्म में तत्कालीन भारतवर्ष में फली अशिक्षा को भी दर्शाया गया ह कि भारतीय कृषक सिर्फ ब्याज पर ब्याज देना जानता ह तथा वह हमेशा यही समझता ह कि उसके दुखों का कारण पूर्व जन्म के कर्म हैं न कि साहूकारी व्यवस्था। इस फिल्म का कथानक भी कहीं न कहीं मानवाधिकारों से ही प्रेरित ह

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो 1950 के बाद बनी फिल्मों में मनोरंजन, सूचना, शिक्षा व विकास के मुद्दों से जुड़े तथ्यों का बखूबी प्रयोग किया गया। भारत में 1957 में महबूब खान के निर्देशन में बनी "मदर इंडिया" एक ऐसी फिल्म थी जिसे देश-विदेश में प्रशंसा मिली और इसे भारतीय फिल्मों में से पहली बार ऑस्कर पुरस्कारों के लिए चुना गया। यह फिल्म मनोरंजन व आदर्श के परिप्रेक्ष्य में एक क्रांतिकारी फिल्म थी।

पचास के दशक की शुरूआत के साथ भारतीय सिनेमा ने गुणवत्ता प्रधान फिल्मों के कई दौर देखे। सत्यजीत रे, ऋत्विक घटक आदि ऐसे निर्देशकों का उदय हुआ जिन्होंने भाषायी सिनेमा को नये आयाम दिये। 1955 में राजेन्द्र सिंह बेदी ने "गरम कोट" का निर्माण किया। कवियों के पुनर्वास पर बनी फिल्म "दो आंखें बारह हाथ' 1957 में दर्शकों के समक्ष आयी। इस फिल्म में यह बताने की कोशिश की गयी थी कि कवियों का पुनर्वास हो सकता ह और यदि उन पर भारोसा किया जाये तो वे भी बेहतर इंसान बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त हर अपराधी पहले इंसान होता ह, वह अपराध तो परिस्थितियों के वशीभूत होकर कर बठता ह इस फिल्म ने वास्तव में मानवाधिकारों के प्रति लोगों को जागरूक करने का कार्य किया ह

1962 में 'साहब बीबी और गुलाम' गुरूदत्त के निर्देशन में बनी, प्रकाश झा की दामुल (1984) सई-परांजये की स्पर्श (1979), कथा (1982), रूदाली (1922) प्रमुख हैं। इन फिल्मों में मानवाधिकार जागरूकता के अंकुर दिखायी पड़ते हैं। किसी फिल्म में ऊँच-नीच से जूझते दलित की कहानी हो या भ्रष्टाचार, सामंशाही प्रवृत्ति से जूझता एक आम आदमी, किन्तु गौर करने लायक एक महत्वपूर्ण बात यह ह कि भारतीय फिल्मों में सामान्य तौर पर दो विचारधाराएं हैं। पहला मसाला या लोकप्रिय सिनेमा और दूसरा समानान्तर सिनेमा। मानवाधिकारों के विषयों से संबधित फिल्मों के निर्माण पर यदि ध्यान केन्द्रित किया जाये तो भारतीय फिल्मों की त्रासदी यह ह कि या तो यह विशुद्ध मनोरंजनात्मक होती ह या फिर विशुद्ध संवेदात्मक। ऐसे में एक वर्ग का दर्शक दूसरे वर्ग की फिल्मों को देख नहीं पाता या भारतीय सिनेमा में वह दौर बीत सा गया लगता ह, जबकि मनोरंजनात्मक फिल्में एक सार्थक संदेश के साथ बना करती थीं और व्यावसायिक रूप से सफल भी रहा करती थीं। आज वह संतुलन कोई भी निर्माता-निर्देशक साधने का साहस नहीं जुटा पा रहा ह यह सत्य ह कि भारतीय समानान्तर सिनेमा ने एक से बढ़कर एक शानदार प्रस्तुतियां दी हैं किन्तु अब नया सिनेमा भी व्यावसायिकता की दौड़ में मृतप्राय-सा हो गया ह

मानवाधिकारों की जागरूकता के लिए सिनेमा एक सशक्त माध्यम इसलिए हो सकता ह क्योंकि यह एक ऐसी कला ह जो मानवीय अनुभवों को व्यक्त करने के लिए अपने अधिर में नितांत नया तरीका अपनाती ह फिल्म की भाषा किसी अन्य माध्यम से भिन्न होती ह फिल्म की भाषा मुद्रण माध्यम की लिखित भाषा से भिन्न होती ह साहित्य की भाषा का आधार शब्द ह जिसमें उद्बोधनात्मक शक्ति होती ह शब्द पाठक को उसकी कल्पना की सीमा तक ले जा सकता ह जिससे उसे अपना एक अनुभव संसार रचने की छूट होती ह शब्द का आधार ध्वनि होती ह फिल्म की भाषा कमी के द्वारा चल चित्रांकन, ध्वनि यंत्र द्वारा ध्वनियों के अंकन तथा उनका पुनर्मिश्रण तथा विभिन्न दुकड़ों के संकलन की तकनीक पर आधारित होती ह देखने सुनने के सीधे इन्द्रिय बांध से जुड़ी होने के कारण यह मानवीय चेतना की उच्च पकड़ से युक्त ह अन्ततः कहा जाय तो फिल्में मानवाधिकारों के प्रति जन-जागृति के लिए एक सशक्त माध्यम ह इसलिए फिल्मकार का यह दायित्व बनता ह कि समाज में जो कुछ घट रहा ह उसे अपने कथ्य का विषय बनाये। भारतीय फिल्मकार यह कह कर अपने दायित्व से बच नहीं सकते कि ऐसा हमारे समाज में नहीं होता। यह दृष्टिकोण समस्या को बढ़ाता ह क्योंकि यदि रोग को छुपाया जायेगा तो वह बढ़ता ही जायेगा।

3.4.2 टीवी और मानवाधिकार

भारत जैसे विकासशील देश में जहां घोर सामाजिक विषमताएं मौजूद हैं, ऐतिहासिक रूप से यह एक पुराना समाज है जो नये आधुनिक रास्ते पर चल रहा है। संविधान में इसका घोषित आदर्श स्वतंत्र, धर्मनिरपेक्ष, सार्वभौम, समाजवादी समाज है। यह दुनिया का एक बड़ा जनतंत्र है। इस समाज में अनेक वर्गीय-उपवर्गीय अंतर्विरोध मौजूद हैं। हमारा समाज एक जटिल संक्रमण की प्रक्रिया में निरन्तर बनता बिगड़ता रहता है। तमाम अंतर्विरोधों से ग्रस्त है, इसमें जड़ता भी है और गति भी। इसमें पुरानापन भी है और नयापन भी। यह एक ही वक्त में पूर्व औद्योगिक समाज भी है और उत्तर औद्योगिक समाज भी। किसी भी माध्यम को इन अंतर्विरोधों के साथ तालमेल बिठाना, समझना और पुनः संचारित करना जरूरी है और इसके लिए उपयुक्त कार्यक्रम की तलाश सबसे बड़ी चुनौती है। इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर जोशी कमेटी ने दूरदर्शन के रूप में स्थानीय एवं राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन लाने पर जोर दिया। इसका अभिप्राय यह है कि भारतीय दूरदर्शन के कार्यक्रम मूलतः राष्ट्रीय होने चाहिए, जबकि उसका रूप (ढांचा) स्थानीय होना चाहिए। दूरदर्शन के मौजूदा राष्ट्रीय कार्यक्रम पर टिप्पणी करत हुए कहा गया- 'मौजूदा राष्ट्रीय कार्यक्रम का अर्थ सिर्फ यह है कि बहुत से क्षेत्रीय कार्यक्रमों को एक साथ उन दर्शकों के सामने कर दिया जाता है, जो उसे समझ भी नहीं सकते।'

भारत में टेलीविजन की शुरूआत राष्ट्रीय चैनल दूरदर्शन से हुई, लेकिन आज देश में सैकड़ों राष्ट्रीय तथा स्थानीय समाचार चैनल व मनोरंजन के चैनल मौजूद हैं, जो समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में सक्षम हैं। विशेषकर समाचार चैनल प्रत्यक्ष रूप से मानवाधिकारों के लिए समय-समय पर आवाज उठाता रहता है। कुछ मनोरंजन चैनल भी निरंतर धारावाहिकों के माध्यम से समाज में मौजूद रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार को उजागर करने व मानवाधिकारों की रक्षा के लिए निरंतर संदेश देते रहते हैं।

मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र कहता है- हर व्यक्ति को अपने विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के किसी माध्यम से अपने विचार रखने, सूचना एवं विचार खोजने, प्राप्त करने तथा देने का अधिकार शामिल है। भारतीय दूरदर्शन के लक्ष्यों में सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य यह भी था कि वह भारत का एक नया सूचना समाज

बनाए। उसके घोषित लक्ष्यों में एक नए मनुष्य, एक नई संस्कृति की परिकल्पना निहित ह किन्तु वस्तुस्थिति यह ह कि भारतीय दूरदर्शन अपने घोषित लक्ष्यों और सूचना के बीच कोई स्वस्थ संबंध नहीं बना पाया। सूचना चुनने से लेकर संप्रेषण की क्रिया तक वह मूलतः सूचना की धनात्मक अवधारणा की जगह ऋणात्मक अवधारणा से परिचालित लगता ह

धारावाहिकों या नाटकों में इस बात को यदि देखा जाय कि क्या उनमें मानवाधिकारी दृष्टिकोण से दर्शकों को संदेश प्रेषित करने की कोशिश की गयी तो शुरूआत होती ह हम लोग' से। भारतीय टेलीविजन इतिहास का पहला धारावाहिक 'हम लोग' मूलतः परिवार नियोजन, मद्यनिषेध एवं अन्य सामाजिक मूल्यों को प्रचारित करने के उद्देश्य से प्रसारित किया गया था। किन्तु ज्यों-ज्यों उस पर लोकप्रियतावाद हावी होता गया, उसके मूल संकल्प पीछे ही छूटते गये। इस धारावाहिक में औरत की तस्वीर मूलतः परंपरागत ही रही। बदलती, कामकाजी औरत की तस्वीर वहां नहीं निखर पायी। इसके पश्चात् लोकप्रिय हुए धारावाहिकों में नाम आता ह खानदान' का जिसमें 'हम लोग' के निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के मुकाबले एक व्यापारी खानदान की कहानी थी। भारतीय समाज में पुराने ढंग से उद्योगपति और नये व्यापारियों के तरीकों एवं हितों को टकराहट प्रमुख रही, किन्तु कलात्मक रूप से 'हम लोग' से बेहतर प्रस्तुति होने के बावजूद यह धारावाहिक उच्च वर्ग में ही लोकप्रिय हो पाया। मानवाधिकारों से इतर अगर इस धारावाहिका का सन्दर्भ लिया जाये तो यह कहा जायेगा कि धारावाहिक 'खानदान' बाद में बनने वाले उच्चवर्ग के जीवन पर आधारित धारावाहिकों का पितामाह था। इसके बाद बुनियाद', 'तमस', 'रजनी', 'स्त्री', 'और भी राहें', 'कसौटी', 'सास भी कभी बहू थी', 'शांति', 'उड़ान', 'हकीकत' आदि धारावाहिक काफी लोकप्रिय एवं पारिवारिक रहे।

3.4.3 रेडियो और मानवाधिकार

भारत में रेडियो का नियमित प्रसारण 23 जुलाई 1927 में प्रारम्भ हुआ था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत का पहला रेडियो केन्द्र 1 नवम्बर 1947 को जालधंर में खोला गया। भारत में उपलब्ध जनसंचार के माध्यमों में रेडियो सबसे सशक्त माध्यम ह भारत जैसे विशाल देश में जहां मुद्रण माध्यम या दूरदर्शन की पहुंच की कुछ सीमायें हैं वहां लोगों को सूचना देने और लोगों का मनोरंजन करने में आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका ह

रेडियो के समाचारों का महत्व प्रभाव की दृष्टि से काफी अधिक ह। भारतीय संविधान के 38वें अनुच्छेद में कहा गया ह- 'सूचना देने का दायित्व राष्ट्र पर ह परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं ह कि राष्ट्र अपने प्रसारण माध्यमों से लोगों को केवल अनेक प्रकार के आंकड़े ही देता रहे। रेडियो को भरसक निष्पक्षतापूर्वक जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि यही किसी भी प्रसारण माध्यम की विश्वसनीयता का आधार ह। रेडियो प्रसारण श्रोताओं के लिए ह इसलिए जिन कार्यक्रमों में श्रोताओं की दिलचस्पी ज्यादा होती ह उनका प्रसारण करना भी रेडियो का दायित्व ह'

मानवाधिकार और रेडियो, भारत में कम से कम इन विषयों पर सोचना थोड़ी दूर की बात लगती ह। यदि हम इसके कारणों का विश्लेषण करें तो हमें कई तथ्यों का पता लगेगा। इसमं सबसे महत्वपूर्ण कारक ह भारत में फैली अशिक्षा, गरीबी और जागरूकता की कमी। मूलतः इन तीनों में आपस में परस्पर सम्बन्ध हैं तथा तीनों मिलकर एक ऐसा दुष्चक्र बनाती हैं। जिन पर नियंत्रण कर पाना किसी भी अल्पविकसित देश के लिए एक कठिन कार्य ह

इसमें कोई संदेह नहीं ह कि आकाशवाणी के प्रारम्भिक कार्यक्रमों की रूपरेखा भारतीय ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखकर बनायी गयी थी। उसके 'विज्ञान और किसान' 'ग्राम जगत' आदि जैसे कार्यक्रम खासे लोकप्रिय भी हुये। किसानों ने रेडियो को सुनकर चावल की एक नई प्रजाति विकसित कर ली जिसका नाम ही 'रेडियो राइस' पड़ गया। लोकगीतों के प्रचार में आकाशवाणी ने खासा सराहनीय कार्य किया ह। भारत एक विकासशील देश ह जिसकी जनसंख्या के आधे से ज्यादा भाग को दो वक्त की रोटी नहीं मिलती और लगभग आधी आबादी निरक्षता के भयानक रोग से ग्रस्त ह। ऐसे में उनके लिए ज्यादा आवश्यक ह रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा। कहा भी गया ह कि अधिकारों की मांग पेट भरने के बाद ही होती ह। भारत के लोगों को पहले रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था से हटकर धीरे-धीरे औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख ह

यदि सीधे तौर पर मानवाधिकार आधारित कार्यक्रमों का जिक्र किया जाये तो आकाशवाणी का ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं ह जो प्रत्यक्ष तौर पर मानवाधिकार जागरूकता के लिये कार्य कर रहा हो किन्तु अप्रत्यक्ष तौर पर ऐसे अनेक कार्यक्रमों का प्रसारण आकाशवाणी के विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत किया जा रहा ह जो जनता को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक, सचेत और

सजग करते हैं। किन्तु मानवाधिकारों के अन्तर्गत विशेषीकृत कार्यक्रमों का प्रसारण नहीं हो रहा हैं विविध भारती सेवा ने उपभोक्ता अधिकारों के प्रति जागरूकता को बढ़ाने के लिये 'अपने अधिकार' शीर्षक के तहत एक प्रायोजित कार्यक्रम प्रारम्भ किया था तथा यह काफी लोकप्रिय भी हुआ। 'आओ हाथ बढ़ाये' जीवन बीमा निगम द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम भी मानवाधिकार जागरूकता कार्यक्रम के तहत रखे जा सकते हैं। मानवाधिकार जागरूकता के लिये रेडियो माध्यम का पर्याप्त दोहन नहीं हो पाया ह, रेडियो निरक्षरों के लिये एक वरदान ह जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान व मनोरंजन हासिल कर लते हैं। यह सामान्य जनता में भी सुलभ ह यही कारण ह कि टीवी के व्यापक प्रसार के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो का अपना महत्व आज भी कायम ह

रेडियो जनसंचार का एक सरल माध्यम ह अर्थात् समाज का सामान्य तबका ही इसका मुख्य लक्षित जन ह शाम को जब गांव के किसान थक-हार कर घर पहुंचते हैं तो उन्हें मनोरंजन की शीतल फुहार चाहिए होती ह ऐसे में रेडियो के समक्ष सामंजस्य विठाने की गंभीर समस्या होती ह रेडियो के कार्यक्रम मूलतः या तो सूचना प्रधान होते हैं या फिर मनोरंजन प्रधान। मानवाधिकार जागरूकता संबंधी कार्यक्रम के लिये एक विस्तृत नीति की आवश्यकता ह मानव के समग्र विकास के लिये इनकी उनपयोगिता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता ह किन्तु तथ्यगत बात यह भी ह कि जब तक श्रोता इसकी उपयोगिता को नहीं पहचानेंगे तब तक ऐसे कार्यक्रमों का भरपूर प्रवाह प्रारंभ नहीं होगा। रेडियो के उच्चरित शब्द कार्यक्रमों में (वार्ता, फीचर, परिचर्चा, नाटक, जनहित में विज्ञापनों का प्रसारण आदि में) इस विषय को सुरूचिपूर्ण ढंग से उठाया जाना आवश्यक ह किन्तु हमारा भारतीय समाज अनेक विसंगतियों का शिकार ह ये विसंगतियां क्षुद्र रूप में कहीं न कहीं मानवाधिकार से सम्बन्धित ह यथा दहेज प्रथा, बालश्रम, यौन उत्पीड़न, छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच आदि। वास्तव में यह सब मानवाधिकारों का हिस्सा ही ह और इन मुद्दों पर जागरूकता लाने में रेडियो ने महत्वपूर्ण निभायी ह दहेज प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत जसी कुप्रथाओं पर कुठाराघात किया ह किन्तु इन्हें मानवाधिकारों से कभी जोड़कर नहीं देखा गया। आवश्यकता ह इस स्थिति को बदलने की।

3.4.4 प्रिन्ट मीडिया और मानवाधिकार

अधिकारों के क्रम में जब हम मानवाधिकारों की बात करते हैं तो हम पाते हैं कि मानवाधिकारों की यह अवधारणा अन्य अधिकारों की अपेक्षा अधिक व्यापक ह मानव के लिए अपरिहार्य इन सब सुविधाओं को अनेक लोकतांत्रिक राष्ट्रों ने अपने नागरिकों के विकास के लिए अनिवार्य समझते हुए अपनी-अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप अपने यहां की राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं मूलभूत कानून में स्थान दिया ह

यद्यपि उपरोक्त अधिकार प्रदान अवश्य किये गये हैं किन्तु इन अधिकारों के प्रति आम जनता की जागरूकता में काफी कमी ह और इन अधिकारों से जनता को परिचित कराने का कार्य जन-माध्यमों ने किया ह मुद्रण एक सशक्त जनमाध्यम ह जिसके तहत समाचार पत्र, पत्रिकाएं प्रमुख से आते हैं। प्रिन्ट एक ऐसा माध्यम ह जो सर्वप्रथम जनमाध्यम के रूप में अस्तित्व में आया ह और जब से अस्तित्व में आया ह तब से ही लोगों के बीच सूचना संप्रेषण व जागृत करने का कार्य कर रहा ह मानवाधिकार संबधी समाचारों में मीडिया का साम्राज्यवाद साफ झलकता ह पूरे विश्व का मीडिया यही बताता ह कि मानवाधिकारों का सबसे ज्यादा हनन तीसरी दुनिया के देशों में होता ह सभी समाचार पत्रों में लगभग 50 प्रतिशत समाचारों का योगदान समाचार एजेंसियों का होता ह, शेष उसके अपने संवाददाता तथा सूत्रों से प्राप्त समाचार होते हैं। कहा भी जाता ह कि किसी भी समाचार पत्र का कलेवर समाचार एजेंसियों से प्राप्त समाचारों से ही निर्धारित होता ह

ऐसे में स्थिति एकदम स्पष्ट हो जाती ह कि बड़ी समाचार एजेंसियां हमेशा मानवाधिकार हनन का मामला तीसरी दुनिया के देशों के परिप्रेक्ष्य में ही उठती हैं और दुःख, शोक, चिन्तन बेचकर इन्हें पस बनाना भी खूब आता ह किन्तु विकसित देशों में मानवाधिकार हनन का एक भी मामला मीडिया द्वारा सामने नहीं लाया जाता। यदि हम भारतीय पत्रकारिता की बात करें तो कुछ अपवादों को छोड़कर कोई भी समाचार पत्र-पत्रिका उनकों स्थान देना उचित नहीं समझते। कारण स्पष्ट ह कि इस तरह के समाचार वे अपने खुद के संसाधन से जुटा नहीं सकते क्योंकि धनाभाव के कारण वे उतने साधन-सम्पन्न नहीं हैं। विदेशी मानवाधिकारों संबधी समाचारों के सबंध में भारतीय पत्रकारिता की स्थिति बिल्कुल अच्छी नहीं ह पत्र-पत्रिकाओं में ही समाचार छपते हैं जो विदेशी समाचार एजेंसियों के सहयोग से प्राप्त किये जाते हैं। अपने साधन ऐसे समाचार सूंघने व लाने की प्रतिभा को अभी भारतीय पत्रकारों को साबित करना होगा। समाचार पत्रों में विशेषीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही ह

अब अपराध का अलग, राजनीति का अलग विधि का अलग व खेल का अलग उपसम्पादक तथा संवाददाता होता ह किन्तु अभी ऐसी प्रवृत्ति मानवाधिकारों संबधी समाचारों में नहीं दिख रही ह मानवाधिकारों की जागरूकता संबंधी प्रक्रिया एक निरंतर व लंबी चलने वाली प्रक्रिया ह यह एक झटके में या एक लेख मात्र से नहीं आ जायेगी। यह तभी होगा जब पत्रकारिता इसके महत्व को पहचानेगी और इसकी उपयोगिता को भी समझेगी किन्तु भारतीय पत्रकारिता में अभी इस मुद्दे के प्रति संवदेनशीलता नहीं झलकती ह भारतीय पत्रकारिता पर एक आरोप यह भी लगता ह कि यह मानवाधिकार मुद्दों को उठाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती ह तथा उसका विश्लेषित अनुवर्त नहीं करती ह जबकि मानवाधिकार संबधी समाचारों में इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती ह

हमें यह भी याद रखना होगा कि जहां स्वतंत्रता से पहले भारतीय पत्रकारिता ने भारत की जनता को एक राह व दिशा देकर स्वतंत्रता आन्दोलन में जोड़ा वहीं स्वतंत्रता के बाद यहां की पत्रकारिता ने विशेषकर विकास को अपना उद्देश्य बनाया, लोगों के लिए विकास की राह आसान बनायी तथा मानव के अधिकारों को उन्हें समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मानवाधिकार मुद्दों पर जागरूकता फलाने का यदि कोई ठोस कार्य हुआ ह तो वह भारतीय पत्रकारिता द्वारा ही हुआ ह पत्रकारिता को यदि पारंपरिक जनमाध्यमों से जोड़ दिया जाये तो वह और अधिक प्रभावी हो सकती ह खासकर मावाधिकार मुद्दों पर। यथा-मानवाधिकार विषय को आधार बनाकर एक नौटंकी किसी गांव में की जाती ह तो उससे गांववालों को मानवाधिकार विषय के बारे में जानने में मद्द मिलेगी। यदि इस तरह के समाचारों को समाचार पत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित किया जाये तो जहां-जहां उस समाचार पत्र का प्रसार होगा वहां के लोगों को मानवाधिकार के बारे में सूचना व शिक्षा भी मिलेगी तथा नौटंकी के कथ्य से वे मनोरंजित भी होंगे। पारंपरिक माध्यमों को अगर पत्रकारिता से जोड़ दिया जाये तो निश्चय ही परिणाम चैंकाने वाले प्राप्त होंगे। समाज में आगे बढ़ने व अपने आप को बनाये रखने में जिन मूलभूत आवश्यकताओं की आवश्यकता होती ह उन्हें प्राप्त करना या उनका संरक्षण करना ही मानव अधिकार ह इन मानवाधिकारों को व्यक्ति/मानव को दिलाने में पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण ह विशेषकर कर समाचार पत्र/पत्रिकाएं इसमें अग्रणी ह भारत के परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो समाचार पत्र/पत्रिकाओं का उद्भव ही मानव के अधिकारों को दिलाने के लिए हुआ। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान देखने को मिलता ह इस

दौरान तो कई समाचार पत्र/पत्रिकाएं लोगों तक स्वाधीनता आंदोलन की सूचना पहुंचाने तथा लोगों को स्वाधीनता के लिए जागृत करने के उद्देश्य को लेकर ही प्रकाशित हुये थे।

****

3.5 सारांश

अंत में समग्र रूप से इस सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि मानवाधिकरों के प्रति जनचेतना फैलाने में जनमाध्यमों की भूमिका सराहनीय है। यह अलग अध्ययन का विषय है कि वह क्यों सराहनीय है किन्तु जनमाध्यमों ने मानवाधिकर की अवधारणा को प्रसारित व प्रचारिल किया है। लोगों को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी हुई है तथा इसके प्रति उनमें जागरूकता भी बढ़ी हैं लेकिन अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

अशिक्षा का दंश अभी भी हमारे समक्ष विकराल रूप में खड़ा है। गरीबी व भूख से देश की आधी से ज्यादा जनता त्रस्त है। बालश्रम, बेगार प्रथा, दलित उत्पीड़न, बलात्कार, लूटमार की घटनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है, तब यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि जब लोगों में मानवाधिकर के प्रति जागरूकता आ रही है तो इस तरह की घटनायें क्यों बढ़ रही हैं, इसका कारण यह भी है कि हम अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहे हैं लेकिन दूसरों के अधिकारों को छीनने के लिए तत्पर हैं। इस समस्या का समाधान स्वचेतना और स्वसजगता से ही सम्भव है, मीडिया तो केवल सूचना पहुंचाने का कार्य कर सकता है।

3.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. मानवाधिकार से आप क्या समझते हैं।

प्रश्न 2. जेसी जौहरी ने मानवाधिकार की परिभाषा किस तरह दी।

प्रश्न 3. मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन उसके अस्तित्व

एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं। किसने कहा-

(क) जेसी जौहरी (ख) आरजे विसेट

(ग) डेविड सेलबाई (घ) प्लानो एवं ओल्टान

प्रश्न 4. 'टाइपिस्ट गर्ल' फिल्म बनी

(क) 1924 (ख) 1918 (ग) 1934 (घ) 1926

प्रश्न 5. 'शिराज' रिलीज हुई

(क) 1924 (ख) 1918 (ग) 1934 (घ) 1926

प्रश्न 6. भारतीय संविधान के 38वें अनुच्छेद में क्या कहा गया ह□

प्रश्न 7. भारत में फिल्मों का इतिहास कब शुरू माना जाता ह□

प्रश्न 8. मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र क्या कहता ह□

प्रश्न 9. दूरदर्शन के शुरूआती दौर के किन्ही चार सीरियलों के नाम बताएं।

प्रश्न 10. पचास के दशक में सिनेमा की सक्रियता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो किसी भी व्यक्ति को मानव होने के कारण स्पष्ट कराते हैं। तथा ये अधिकार यह सुनिश्चित करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का मान उसके मानव होने के कारण सभी के बराबबर ह□वह चाहे किसी भी राष्ट्र, धर्म, लिंग, जाति, उम्र से संबधित हो।

उत्तर 2. जेसी जौहरी ने कहा- यह तथ्य ह कि मानव समाज में कई स्तरों पर विभेद मौजूद ह चाहे वह भाषा, वर्ण या लिंग के आधार पर हो किन्तु इनके बावजूद कुछ अनिवार्यतायें सब समाजों में विद्यमान हैं यही अनिवार्यता मानव अधिकार ह जो एक व्यक्ति को मानव होने के कारण मिलना चाहिए।

उत्तर 3. प्लानो एवं ओल्टान

उत्तर 4. 1918 में

उत्तर 5. 1926 में

उत्तर 6. भारतीय संविधान के 38वें अनुच्छेद में कहा गया ह कि सूचना देने का दायित्व राष्ट्र पर ह परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं ह कि राष्ट्र अपने प्रसारण माध्यमों से लोगों को केवल अनेक प्रकार के आंकड़े ही देता रहे। रेडियो को भरसक निष्पक्षतापूर्वक जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि यही किसी भी प्रसारण माध्यम की विश्वसनीयता का आधार ह रेडियो का पूरा प्रसारण श्रोताओं के लिए ह इसलिए जिन कार्यक्रमों में श्रोताओं की दिलचस्पी ज्यादा होती ह उनका प्रसारण करना भी रेडियो का परम दायित्व ह

उत्तर 7. भारत में फिल्मों का इतिहास सन् 1896 में शुरू होता ह जब 7 जुलाई 1896 को मुम्बई के टाइम्स आफ इण्डिया में एक फिल्म से संबधिंत विज्ञापन छपा था।

उत्तर 8. मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र कहता ह हर व्यक्ति को अपने विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार ह इस अधिकार में बिना किसी हस्तक्षेप के किसी माध्यम से अपने विचार रखने, सूचना एवं विचार खोजने, प्राप्त करने तथा देने का अधिकार शामिल ह

उत्तर 9. दूरदर्शन के शुरूआती दौर के चार प्रमुख धारावाहिक 'खानदान' 'बुनियाद', 'तमस' तथा 'रजनी' हैं।

उत्तर 10. गुणवत्ता प्रधान और भाषा प्रधान फिल्मों का दौर रहा। *(देखें फिल्म और मानवाधिकार)*

3.8 शब्दावली

मानवाधिकार : मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मानवीय जीवन एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये अनिवार्य हैं। मूलतः यह व्यक्ति की गरिमा से संबधिंत हैं। हर व्यक्ति की गरिमा की समान स्वीकृति व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य दोनों का आधार ह मानवाधिकार और कर्तव्य बुनियादी मूल्यों की स्वतंत्रता एवं न क्ता से उत्पन्न होते हैं।

जनमाध्यम : सूचना प्रेषण अथवा सूचना प्रदान कराने वाले ऐसे माध्यम जो जन-जन तक सूचनाओं का संप्रेषण करते हों जनमाध्यम कहलाते हैं। ज टीवी, रेडियो, समाचार पत्र आदि।

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पचौरी सुधीश: दूरदर्शन : दशा और दिशा: (1994) प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।

2. सिंह ओमप्रकाश : संचार माध्यमों का प्रभाव, क्लासिकल प्रकाशन कम्पनी, नई दिल्ली।

3. रयाल राकेश : टिहरी बांध निर्माण एवं विस्थापन पर जनसंचार माध्यमों का प्रभाव, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ।

4. श्रीवास्तव मुकुल : मानवाधिकार और मीडिया (2008), अटलांटिक प्रकाशन, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली।

5. राय अरूण : भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 2002, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

3.10 सहायक/उपयो ी पाठ्य सामग्री

1. राय अरूण : भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (2002), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

2. श्रीवास्तव मुकुल : मानवाधिकार और मीडिया (2008), अटलांटिक प्रकाशन, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली।

3. विकिपीडिया. कॉम

4. जीपी सिंह, दनिक जागरण, 18 नवंबर, 2011

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानवाधिकार से आप क्या समझते हैं, इन्हें प्रबल बनाने में तथा इनके लिए आम जन को सजग करने में मीडिया की क्या भूमिका हो सकती ह

2. प्रिन्ट मीडिया किस तरह से मानवाधिकारों के प्रति व्यक्ति को जागृत करने में सक्षम ह, इसकी व्याख्या कीजिए।

3. फिल्म और मानवाधिकारों पर एक निबंध लिखिए।

4. क्या स्वतंत्रता से पूर्व भी भारत में मीडिया ने मानवाधिकारों के प्रति लोगों को सजग किया ह, उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

ईकाई-4

मीडिया और महिला

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 महिला और विमर्श की जमीन के बीच

4.3 महिलाओं ने जीती खबर पढ़ने की जंग

4.4 महिला अपराध की रिपोर्टिंग-कलम, कैमरा और दुष्कर्म

4.5 मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाएं और नियम

4.6 महिला अपराध रिपोर्टिंग- दशा से दिशा तक

4.7 महिला पत्रकारों-पत्रिकाओं से जुड़ी रोचक जानकारियां

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 बोध प्रश्न

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.12 संदर्भ ग्रंथ/उपयोग सामग्री

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

-विद्यार्थियों को मीडिया और महिला की मौजूदा स्थिति से रूबरू कराना।

-विद्यार्थियों को महिलाओं के विकास में मीडिया की भूमिका से परिचित कराना।

-विद्यार्थियों को महिला अपराध रिपोर्टिंग की संभावनाओं से परिचित कराना।

-विद्यार्थियों को मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाओं और नियमों से बोध कराना।

4.1 प्रस्तावना

मीडिया अपने सभी रूपों में समाज के लिए उत्तरदायी है। महिलाओं की स्थिति को लेकर मीडिया काफी सतर्क रहता है, लेकिन कुछ न कुछ कमियां रह ही जाती हैं। बीते कुछ वर्षों में जब से मीडिया का अपना काफी विस्तार हुआ, उसने महिलाओं की कवरेज को लेकर एक नया अध्याय ही रच डाला है। कई मीडियम जहां संवेदनाओं को प्राथमिकता देते हैं और महिलाओं के मामलों को संजीदगी से पेश करते हैं तो कुछ मीडिया संस्थान महिलाओं को भी नहीं बख्शते और सीमाओं को तोड़कर रिपोर्टिंग में लग जाते हैं। इससे समाज में महिलाओं को काफी दिक्कतों का सामना करना

पड़ता है। मीडिया को इससे बचना चाहिए जिससे कि महिलाओं का सम्मान बचा रह सके और वे खुली हवा में सांस ले सकें।

4.2 महिला और विमर्श की जमीन के बीच

स्वामी विवेकानंद ने कहा था - औरत के उत्थान के बिना समाज का उत्थान हो ही नहीं सकता। कोई भी चिड़िया एक पंख से उड़ान नहीं भर सकती। सामाजिक विकास को लेकर होने वाली तमाम बहसों के केंद्र में औरत रही है। आधी आबादी होने का सच और परिवार की आधार होने की प्रमुख सत्ता ने औरत के वजूद को हमेशा वजन दिया है और साथ ही बरसों के विभिन्न सामाजिक सचों के बीच औरत की स्थिति हमेशा एक गंभीर विमर्श पर भी जोर देती रही है। जेंडर से जुड़ा सवाल मीडिया और कल्चर के संबंध के हर हिस्से को छूता है। इसके केंद्र में जेंडर ही है। वैन जूनेन लिखती हैं - जेंडर के अर्थ कल्चर और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के हिसाब से बदलते रहते हैं। ऐसे में जन संचार पर जेंडर का परिप्रेक्ष्य समझ के नए आयामों को खोलता है।[1]

महिला आंदोलन की तमाम गूंजों के बीच मीडिया एक बड़े औजार के तौर पर उभरा है और उसने हर तरह के आंदोलन की दशा और दिशा तय की है। मीडिया पर होने वाले तमाम विमर्शों के केंद्र में महिला और पूंजी- यह दोनों ही हमेशा से रहे हैं। पूंजी ने जहां मीडिया के टिके रहने की शर्तों को पूरा किया है, वहीं महिला ने सामाजिक जमीन को तैयार किया है। यह बात अलग है कि हरेक माध्यम ने महिला की व्याख्या कुछ अलग ढंग से की है। जनसेवा प्रसारण करते दूरदर्शन या आकाशवाणी पर आती एक व्यवस्थित महिला हो या निजी टीवी चैनल की आकर्षक महिला या फिर सामुदायिक रेडियो को संभालती एक जिम्मेदार महिला – सभी जगहों पर एक अलग बिंब उभरता हुआ दिखता है जो स्त्री विमर्श के नए मुहावरे गढ़ने के लिए मजबूर करता है। मीडिया में महिलाओं का चित्रण समाज के हर पहलू को परिभाषित करता है।

फिल्म डर्टी पिक्चर में विद्या बालन कहती हैं कि फिल्मों में तीन ही चीजें बिकती हैं। वे हैं – एंटरटेंमेंट, एंटरटेंमेंट और एंटरटेंमेंट। यह कहानी सभी माध्यमों की है लेकिन यहां एक बड़ा फर्क यह

[1] फेमिनिस्ट मीडिया स्टडीज, सेज, 2006

ह कि एंटरटेंमेंट का यह पक्ष आमतौर पर एक अगंभीर और असंवेदनशील जमीन को खड़ा कर देता ह नतीजा यह कि जिस माध्यम से स्त्री विमर्श की गूंज को सशक्त बनाया जा सकता था, वहां सीलन दिखने लगती ह न्यूज मीडिया में जेंडर रिपोर्टिंग पर दुनिया के सबसे शोधपरक प्रयास ग्लोबल मीडिया मॉनिटरिंग रिपोर्ट का यहां जिक्र करना होगा। इस रिपोर्ट को तय्यार करने के लिए वर्ष 2009-10 में 130 देशों के 42 सैंपल लिए गए। इसके लिए 14,044 खबरों का चुनाव किया गया। इसमें यह पाया गया कि राजनीति या सरकारी समाचार अब भी कुल कवरेज का 27 प्रतिशत हिस्सा लेते हैं जबकि अपराध और हिंसा 20 प्रतिशत ह रिपोर्ट में यह कहा गया कि सबसे जरूरी मुद्दों पर भी महिलाओं की राय कोई खास मायने नहीं रखतीं। तमाम समाचार माध्यमों में सरकार और राजनीति पर महिला के विचार 4 प्रतिशत और अर्थव्यवस्था जसे मुद्दों पर सिर्फ 1 प्रतिशत जगह ही हासिल कर पाते हैं। इस रिपोर्ट को देखने के बाद दक्षिण अफ्रीका से निकलने वाले समाचार पत्र डेली लिंक्स के संपादकीय में खास तौर से यह कहा गया कि "अगर कवरेज की स्थिति यही रही तो हमें किसी सफलता तक पहुंचने में कम से एक शताब्दी और लगेगी।[2] महिलाओं की स्थितियों को लेकर वास्तव में मीडिया संस्थानों को संजीदा होना पड़ेगा और उनकी कवरेज को भी हर हाल में बढ़ाना पड़ेगा वरना संतुलन बिगड़ेगा।

4.3 महिलाओं ने जीती खबर पढ़ने की जं

70 के दशक में ब्रितानी टेलीविजन में महिला एंकर एंजिला रिपन और अन्ना फोर्ड नियमित तौर पर समाचार पढ़ने लगीं तो यह आम लोगों के साथ-साथ प्रेस के लिए भी बड़ा अजूबा बना। समाज में एक नई भूमिका के साथ मद्दान में उतरी ये महिलाएं चुटकुलों, तस्वीरों और द्विअर्थी टिप्पणियों का शिकार बनीं। उनकी लिपस्टिक और टेबल के पीछे छिपी टांगें छींटाकशी पाती रहीं। यहां तक कहा गया कि टीवी के स्क्रीन पर खबर पढ़ी महिला को देखकर पुरूषों की आंखें *फिसलती* हैं। ऐसे में खबर पर ध्यान को टिकाना सहज नहीं हो पाता और खबर भी सिर्फ खबर भर नहीं रह पाती। लेकिन इस कटाक्ष के बावजूद महिलाएं खटाखट खबर पढ़ती गईं और धीरे-धीरे ग्लोबल परिप्रेक्ष्य में भी स्वीकार्य होती चली गईं।[3] इस जिद्दीपने और प्रोयोगिक माहौल का एक सीधा असर

[2] http://www.indiatogether.org/2010/mar/ajo-gendrep.htm
[3] न्यूज कल्चर – स्टूअर्ट एलन, ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004

यह भी हुआ कि धीरे-धीरे लोगों का मीडिया को पढ़ने और समझने का नजरिया खुलने लगा। समाज की मीडिया और उससे जुड़े संकेतों के प्रति विचारधारा परिपक्व होने लगी।

टेलीविजन मीडिया ने प्रिंट के उस अलिखित नियम को जरूर पलट ही दिया जिसमें महिलाओं को सिर्फ फीचर योग्य ही माना जाता था। इन महिला एंकरों की बदौलत मीडिया की दुनिया को जेंडर सेंसिटिव बनाने का माहौल बनाने की शुरूआत हो गई।[4] दरअसल टेलीविजन मीडिया में आने वाले बदलाव ज्यादा तत्पर होते हैं। यहां नए अलंकार और नए खिलाड़ी रोज आ जुड़ते हैं। लेकिन मीडिया स्टडीज में सबसे बड़ी चुनौती यही है कि तमाम माध्यमों के बीच कॉमन यानी एकसमान क्या है। अलग-अलग देशों की सत्ताओं और रूचियों के आस-पास घूमता मीडिया बाहरी प्रभावों से कतई अछूत नहीं है, ऐसे में राष्ट्रीय प्रणाली से लेकर सांस्कृतिक कलेवर तक मीडिया के पड़ने वाले असर की गहन समीक्षा अनिवार्य हो जाती है। यही वजह है कि पिछले एक दशक में मीडिया से निकलने वाली ध्वनियों और संकेतों पर गहन शोध की जरूरत महसूस की जाने लगी है।

नए भारत में भी न्यूज एंकरिंग की स्पेस पर महिलाओं का वर्चस्व कायम हो चुका है। खबर की प्रस्तोता से लेकर खबर को जोड़कर लाने वाली भी महिला ही है। अब अगर यह पूछा जाए कि तमाम न्यूज चैनलों में एक कामन बात क्या है तो उसमें ब्रेकिंग न्यूज की हड़बड़ी के अलावा यह बात जरूर आएगी कि इन्हें पढ़ने वालों में महिलाएं ही ज्यादा हैं।

लेकिन इन कुछ सालों ने महिला एंकरों के चेहरे से लेकर पहनावे और चेहरे के भावों को भी काफी हद तक बदल कर रख दिया है। दूरदर्शन की पाषाणयुगीन भावनाशून्य चेहरा लिए एंकर 90 का दशक पार करते-करते एकदम मुखर हो उठी। वो जरूर अतिरेक उत्साह से भर उठी। कलफदार साड़ी पहनकर एक भारतीय नारी की जो छवि दूरदर्शन ने गढ़ी थी, वो उससे भी चाबुक की गति से बाहर निकल आई। अब जो छवि बनी, वो चुस्ती, फुर्ती और मस्ती की थी। सबसे पहले तो साड़ी दरकिनार कर दी गई। कुछेक चुनिंदा एंकरों को छोड़ दें तो निजी चैनलों में साड़ी अब बीते समय की बात हो गई लगती है।

[4] महिलाओं ने जीती खबर पढ़ने की जंग- वर्तिका नन्दा, 13 फरवरी, 2011, दैनिक हिंदुस्तान

एक बदलाव आत्मविश्वास को लेकर आया है। महिलाएं भरपूर आत्मविश्वास के साथ सामने आती हैं। स्क्रीन पर ये पूरे नियंत्रण में दिखती हैं और एक सधे हुए वातावरण का निर्माण करती चलती हैं। यह सिर्फ सुबह की रौशनी और रात के ढलने तक ही नहीं दिखतीं। यह पूरे चौबीसों घंटे दिखती हैं। इससे एक सीधा संदेश यह भी जाता है कि महिलाओं के इस युग से डर की कंपकपी अब घटी है। बरसों पहले जिन महिलाओं को नाजुक-नरम करार करते हुए उन्हें सीमित अवधियों में बांट कर उन पर जो कटाक्ष किए जाते थे, वे अब सिमटे हैं क्योंकि महिलाओं चौबीसों घंटे मुस्तैद हैं। लेकिन इस सारे खेल के बीच कुछ बातें अब भी समझ में नहीं आतीं। निजी चैनलों में महिला एंकर को लेकर एक परिपाटी जरूर तय ही कर दी गई है। भारतीय मीडिया में शोध की गंभीर कमी का ही असर है कि कुछ बातें खुद ही तय कर ली गई हैं। यह माना जाता है कि दर्शक उन्हें पश्चिमी परिधान में देख कर ही खुशी महसूस करेगा। यही वजह है कि एंकरिंग को काफी हद तक युवतियों तक ही सीमित कर के रख दिया गया है। बीबीसी और सीएनएन से सबक लेने में शायद हमें अभी कई साल लगेंगे। एक बात और। टीवी की महिला एंकर को अब भी सजा-धजा दिखाया जाना अगर मजबूरी है तो वैसी गहन मजबूरी पुरूष एंकर के साथ क्यों नहीं। महिला एंकर को चश्मा पहने दिखाना भी अब तक ज्यादा पाचन योग्य हो नहीं सका है। ऐसे कई सवाल हैं जिनके जवाब मीडिया के इस नए मौसम को बेहतर तरीके से समझने में मदद कर सकते हैं और भविष्य में मीडिया मे महिलाओं की भूमिका को लेकर नए मापदंड तय कर सकते हैं।

4.4 महिला अपराध की रिपोर्टिंग – कलम, कैमरा और दुष्कर्म

याद कीजिए 15 अक्तूबर, 2003 का वह दिन जब न्यूज मीडिया के हाथ एक धमाकेदार खबर लगी थी। खबर थी - सिरीफोर्ट आडिटोरियम के पास स्विट्जरलैंड की एक राजनयिक का बलात्कार होना। खबर कई वजहों से *'खबर'* लायक बनी। एक, घटना का दक्षिणी दिल्ली में होना (जो कि अपने में एक पॉश इलाका है)। दूसरे, एक विदेशी महिला का बलात्कार होना (गोरी चमड़ी का मामला होना)। तीसरे, घटना का उस समय होना जब दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह चल

रहा था और चौथे, पीड़ित का यह शक जाहिर करना कि अपराधी किसी उच्च वर्ग से ताल्लुक लगता दिखता था क्योंकि वह *'फर्राटेदार अंग्रेजी'* बोल रहा था।

कुल मिलाकर इस खबर में वह सब कुछ था जो कि बलात्कार की इस घटना को बड़ी कवरेज लायक बनाता। लिहाजा यह घटना बड़ी बनी। मीडिया इस घटना को पूरे मसाले के साथ उछालता ह और 9 दिन पहले (6 अक्तूबर, 2003) दिल्ली के बुद्धा जयंती पार्क में राष्ट्रपति के सुरक्षा गार्डों के हाथों हुए बलात्कार से जोड़ कर दिल्ली को महिलाओं के लिए *अत्यधिक असुरक्षित* घोषित कर देता ह तो आखिरकार पुलिस यह दरख्वास्त देती ह कि अब इस मामले को खत्म करने में ही समझदारी ह क्या इसका मतलब यह समझा जाए कि एक समय के बाद ऐसे मामलों की गंभीरता कम हो जाती ह या फिर यह कि मीडिया को घटनाओं को *फॉलो* करने की आदत अभी ही पड़ नहीं सकी ह इस संदर्भ में दूसरी वजह ज्यादा वाजिब लगती ह

भारत में हर साल बलात्कार के 15000 से ज्यादा मामले दर्ज होते हैं और हर तीन मिनट में एक महिला पर किसी न किसी तरह का अपराध किया जाता ह अमरीका के सरकारी आंकड़े कहते हैं कि वहां हर 15 सेकेंड में एक महिला का शोषण होता ह और मिस्र में 35 प्रतिशत महिलाओं का उनके पति उत्पीड़न करते हैं । भारत में 1971 से लेकर आज तक बलात्कार के मामलों में 700 प्रतिशत की वृद्धि हुई ह जबकि ब्रिटेन में 1985 से लेकर अब तक 400 प्रतिशत की।

भारत में नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो साल 1971 से देश में हो रहे अपराधों का खाका साल दर साल देता आ रहा ह आंकड़ों के आने के बाद एक-दो दिन तक औपचारिक तौर पर अपराधों की बनती-बिगड़ती सेहत पर बहस भी होती ह अपराध क्यों होता ह, इस पर सामाजिक-वैज्ञानिक स्तर पर विचारिक मंथन की परंपरा भी कुछ हद तक कायम दिखाई देती ह लेकिन जो पहलू सबसे ज्यादा विचारणीय लेकिन उपेक्षित लगता ह - वह ह बलात्कार, हत्या, अपहरण, घरेलू हिंसा वगैरह की कवरेज को लेकर मीडिया का रवैया। यहां बात ज्यादा बलात्कार की ही होगी।

महिला अपराध की रिपोर्टिंग में एक बड़ा सच श्रेणियों का भी ह जैसे कि बलात्कार की कवरेज पीड़ित की क्लास (निम्न, मध्य या उच्च वर्ग), जगह (स्लम, पाश या मध्यमवर्गीय), पारिवारिक पृष्ठभूमि, शहर, शैक्षिक योग्यता वगैरह के आधार पर जगह और प्राथमिकता पाती ह इसके अलावा आरोपी की पृष्ठभूमि भी काफी मायने रखती ह बलात्कार जब तक ठोस खबर की वजह नहीं बनता, वह मीडिया की नजरों से अछूता रहता ह और कई बार न्याय पाने में भी पिछड़

जाता है। ऐसे तमाम बलात्कार, जो कि मीडिया को किसी भी तरह से कौतुहल बनाने लायक लगते रहे हैं, की कवरेज भरपूर रस के साथ की जाती रही है। मौलाना आजाद कालेज का बलात्कार मामला (15 नवंबर, 2002) मध्यमवर्गीय पढ़ी-लिखी युवती का था जिससे बलात्कार पुलिस मुख्यालय के एकदम करीब हुआ था। दिल्ली में ही राष्ट्रपति के सुरक्षा गार्डों ने जब बुद्धा गार्डन में एक युवती से बलात्कार किया तो उसे मीडिया ने खूब जगह दी। यह मामला भी कुछ ही घंटों में सुलझा लिया गया।

इसी तरह जयपुर में एक विदेशी महिला के बलात्कार के मामले पर तो *फास्ट कोर्ट* का ही गठन कर दिया जाता है। और अपराधियों को चुटकियों में सजा दे दी जाती है। लेकिन दूसरी तरफ गरीब बस्तियों में होने वाले बलात्कार बमुश्किल दो कालम की खबर बन पाते हैं। एक तो मीडिया इन्हें 'खास' नहीं मानती और दूसरे इसमें चटखारे लेने लायक कुछ नहीं होता। वैसे भी मीडिया ऐसे वर्ग से जुड़े अपराधों को कवर करने में दिलचस्पी लेता है। जिससे वह खुद का जुड़ाव महसूस करता हो। चूंकि मीडिया में एक बड़ी हिस्सेदारी मध्यम या उच्च वर्ग के पत्रकारों की है, इसी श्रेणी से कवरेज ज्यादा तवज्जो भी पाती है। मीडिया के इस रवैये को पुलिस भी पहचानने लगी है। यही वजह है कि निम्न वर्ग पर हुए आपराधिक मामले आज भी थानों में आसानी से दर्ज नहीं हो पाते। अगर दर्ज होते भी हैं तो बड़े सच को छोटे में तब्दील कर दिया जाता है। जहां बलात्कार को अक्सर 'छेड़छाड़ ' का मामला बना दिया जाता है। और फर्ज निभ जाता है।[5] पर इसका यह मतलब कतई नहीं कि अगर अपराध की बेतहाशा कवरेज होती है तो हर हाल में न्याय पाने का रास्ता भी आसान हो जाएगा। बेतहाशा कवरेज के बावजूद स्विस रेप केस सुलझ नहीं सका जबकि मौलाना आजाद कालेज का मामला चंद दिनों में ही सुलझा लिया गया। अपराध की हर पल की रिपोर्ताज से भले ही पुलिस पर अतिरिक्त दबाव पड़ जाए लेकिन इस वजह से कई बार या तो सही अपराधी पकड़ में नहीं आता या फिर उसे अपनी बात कहने का पूरा मौका नहीं मिल पाता। मामला आनन-फानन में सुलझा हुआ दिखा दिया जाता है। बाद में न्यायिक प्रक्रिया भी कई बार मीडिया रिपोर्ताज से प्रभावित दिखाई देती है।

वैसे इस सच को भी नकारा नहीं जा सकता कि मीडिया का महिला अपराध के प्रति भेदभावपूर्ण नजरिया रहा है। पुरूष के हाथों महिला का यौन शोषण होना बड़े और तीखे सवाल खड़े

[5] वर्तिका नन्दा 21 दिसंबर, 2008 को दैनिक हिंदुस्तान

नहीं करता लेकिन महिला अगर पुरूष पर हमला कर देती है तो वह *'मैन बाइट्स डॉग '* की तरह देखा जाता है यह दिलचस्प है कि पूरी दुनिया में मुख्यधारा मीडिया में इस तरह की मानसिकता रही है 1993 में लोरेना बॉबिट जब अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर उसका लिंग काट देती है तो मीडिया हफ्तों इस मामले को भूल नहीं पाती।[6] अमरीकी न्याय विभाग के मुताबिक 89 प्रतिशत यौन अत्याचार पुरूषों के हाथों होते हैं और इनमें से 99 प्रतिशत पीड़ित महिलाएं होती हैं। अब सोचने की बात यह है कि महिला पर होने वाले अपराध क्या उतनी प्राथमिकता हासिल कर पाते हैं ?

4.5 मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाएं और नियम

हालांकि भारत में महिलाओं को लेकर कानूनों में कई फेरबदल हुए हैं लेकिन खुद संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में इन्हें नाकाफी माना गया है इस मामले में भारत अब भी काफी पीछे है यहां अब भी सिर्फ 3 प्रतिशत महिलाएं ही जज बन सकी हैं। 2011 में संयुक्त राष्ट्र संगठन ने "Progress of the World's Women" के शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी की जो कि महिला समानता और सशक्तीकरण को समर्पित थी। इस रिपोर्ट में इस तथ्य को रेखांकित किया गया कि तमाम कोशिशों के बावजूद भारत में महिला से जुड़े कानूनों को लागू करना सहज नहीं हो पाया है इस रिपोर्ट में घरेलू हिंसा नियम, 2005, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005, बाल विवाह रोक अधिनियम, 2006 और विशाखा से जुड़े निर्देशों का खास तौर से उल्लेख किया गया। इसी तरह भ्रूण हत्या को लेकर कानून की कमजोरी भी एक बड़ी चुनौती है हालांकि पंचायती राज संगठन की वजह से ग्रासरूट से जुड़ी सैंकड़ों महिलाओं को स्थानीय नियमन और प्रशासनिक कामों में सक्रिय भागेदारी का मौका मिला है लेकिन इसे बावजूद अनुसूचित जाति-जनजाति से चयनित हुई 119 महिलाओं मे से सिर्फ एक-तिहाई को ही अपने काम को अपने हिसाब से करने की छूट मिल सकी। इसी तरह राजकीय और राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के लिए कोई आरक्षण नहीं है[7]

[6] [6] http://en.wikipedia.org/wiki/Lorena_Bobbitt
[7] http://www.thehindu.com/news/national/article2208160.ece

भारत में महिलाओं से जुड़े मुद्दों की रिपोर्टिंग कभी भी पूरी तरह से सधी, संवदेनशील और नियंत्रित नहीं रही ह महिला से जुड़ी रिपोर्टिंग को कई कोणों से जांचा जाता रहा ह हत्या, अपहरण, बलात्कार, घरेलू हिंसा आदि की रिपोर्टिंग कई बार क्रूर होती महसूस की गई लेकिन तीखे सवाल कभी नहीं जगे। भले ही मीडिया की पैनी नजरों की वजह से 21 अप्रैल, 2005 को मेरीन ड्राइव बलात्कार मामले में पुलिस इंस्पेक्टर सुनील मोरे को सजा हो गई लेकिन यहां भी मीडिया समुद्र किनारे बैठने वाले जोड़ों को लेकर नैतिकता का सवाल उठाने से नहीं चूका।

इसी तरह मीडिया को बलात्कार पीड़ित या बाल अपराध के मामलों में पीड़ित या बाल अपराधी की पहचान बतानी चाहिए या नहीं, इस पर भी गंभीर चर्चाएं कम ही हुई हैं। 1996 में डिक हॉस और मेलेडी रामसे ने एक सर्वेक्षण किया और यह नतीजा निकला कि विन्संटन सलेम जरनल में जिन 18 बलात्कार पीड़ितों के नाम छापे गए थे, उन्हें इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। इन पीड़ितों का कहना था कि ऐसा किए जाने की वजह से उन्हें भावनात्मक स्तर पर तो जूझना ही पड़ा, उनके निजी सामाजिक रिश्तों में भी कड़वाहट घुल गई। कई महिला पीड़ितों का बयान था कि वे नहीं जानती थीं कि मीडिया उनकी पहचान को इस तरह सरेआम उछाल देगा। अगर वे जानतीं कि ऐसा हो सकता है तो वे अपराध को दर्ज ही न करवातीं।[8]

फरवरी 2012 में दिल्ली से सटे नौएडा में 10वीं कक्षा की एख छात्रा से चलती कार में बलात्कार किए जाने का मामला सामने आता ह और नौएडा के पुलिस अधीक्षक बड़े मजे से उस लड़की की पहचान को सार्वजनिक कर देते हैं। बाद में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) सक्रिय होता ह और उत्तर प्रदेश सरकार से शहर के पुलिस अधीक्षक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग करता ह हालांकि बाल न्याय अधिनियम की धारा 21 के तहत किसी भी मामले में पीड़ित नाबालिगों की पहचान को सार्वजनिक करने की मनाही ह लेकिन तब भी इस तरह की घटनाएं काफी आम हैं। भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष मार्कंडेय काटजू को भी मीडिया को बार-बार याद दिलाना पड़ता ह कि वह महिलाओं और बच्चों से जुड़े अपराधों की रिपोर्टिंग करते समय संयम बरतें लेकिन दुखद बात यह ह कि वे भी इस गंभीर मुद्दे को सिर्फ शादी से जोड़ कर मौन हो

[8] Dick Haws, Rape Victims: Papers shouldn't name you. American Journalism Review, September 1996, pp 12-13

जाते हैं। वे बयान देते हैं कि अगर रिपोर्टिंग में एहतियात न बरती जाए तो उससे पीड़ित की शादी की संभावना प्रभावित होगी।[9]

इतना साफ है कि बलात्कार जैसे संगीन अपराध पर आज भी व्यावहारिक, सामाजिक और न्यायिक एकजुटता और प्रतिबद्धता की कमी दिखाई देती है। भारत की संसद में भी तत्कालीन गृह मंत्री लालकृष्ण आडवाणी की मौजूदगी में यह बहस हो चुकी है कि बलात्कारी को फांसी की सजा दी जाए या नहीं। तमाम कोशिशों के बावजूद आज भी बलात्कार के मामलों में आरोपी को सजा दिए जाने की दर चार प्रतिशत के आस-पास है। जाहिर तौर पर इस माहौल में बलात्कार की रपट थाने तक ले जाने के लिए अतिरिक्त हिम्मत चाहिए, फिर जोर लगाकर मामला दर्ज करवाना और मामले को अंत तक ले जाना किसी टेढ़ी खीर से कम नहीं। वैसे भी घर-परिवार से लेकर न्यायिक प्रक्रिया तक में शक बलात्कार करने वाले के बजाय बलात्कार की पीड़ित के आस-पास ही घूमता है। और पीड़ित का चारित्रिक विश्लेषण किया जाता है। यही वजह है कि तमाम अपराधों की तुलना में यह शायद इकलौता ऐसा अपराध है जहां पीड़ित को अपराध दर्ज करवाने और न दर्ज करवाने-दोनों ही परिस्थितियों में अनकही सजा भुगतनी पड़ती है।

रोसालिंड गिल ने अपनी चर्चित किताब *जेंडर एंड दी मीडिया* में साफ तौर पर लिखा है कि बलात्कार की रिपोर्टिंग कई बार गैर-जरूरी मुद्दों के आस-पास भटकती है। बलात्कार को स्वाद बढ़ाने की डिश की तरह परोसा जाता है। लड़की पर रिपोर्टिंग 'इच्छुक पार्टनर' की परिपाटी में ढालकर की जाती है। वे दक्षिण अफ्रीका में हुए बलात्कार की कुछ घटनाओं का जिक्र करती हैं जहां कई बार बलात्कारी युवकों की नज़र से बलात्कार की रिपोर्टिंग की जाती है। लेकिन युवती के लिए हमदर्दी दिखाई नहीं देती। वे एक अखबार में छपी एक ऐसी ही ख़बर का जिक्र करती हैं जिसमें बलात्कार के चार आरोपी युवकों को भरपूर कपड़ो में जबकि पीड़ित युवती को लगभग नग्न दिखाया गया है।[10]

सिंथिया कार्टर ने *न्यूज़, जेंडर और पावर* में तीन महीने में खंगाली गई 840 प्रेस रिपोटों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यौन शोषण पर आधारित खबरें आमतौर पर अर्धनग्न तस्वीरों के पास छापी जाती हैं ताकि रेप *'सेक्सुअल पैकेज'* की तरह उभर कर सामने आए। वे *'दि मिरर'* छपी एक खबर का जिक्र करती हैं जहां 21 साल की एक युवती की बलात्कार के बाद हत्या कर दी

[9] http://www.jansattaexpress.net/?p=7834
[10] Gill, Rosalind: Gender and the Media, Polity Press, 2007

जाती है। इस ख़बर के साथ एक लेख भी छपा था जो बताता था कि कई *सेक्स शॉप्स* लोकप्रियता पा रही हैं। साथ ही एक अर्धनग्न औरत की तस्वीर थी जो कि लेसयुक्त अंडरवियर पहने हुए थी। कुछ इसी तर्ज पर ब्रिटेन में *दि सन* में पेज 3 पर नियमित तौर पर अर्धनग्न युवतियों की तस्वीर छपा करती है।[11]

इसी तरह रेप को *प्ले रेप* से जोड़ देने की ब्रिटानी परंपरा भी चर्चा का मुद्दा रही है। इसमें यह जताने की कोशिश होती रही है कि बलात्कार को रोमांचक अनुभव भी माना जा सकता है। कुछ ने यह भी माना कि बलात्कार की घटना को थाने तक ले जाना पीड़ित की '*मानसिकता* ' को भी दर्शाता है।[12] ऐसे मामले भी कम नहीं जहां आरोपी युवक के *'अच्छे चरित्र'* के कसीदे गढ़े गए हैं और पीड़ित महिला के चरित्र पर अप्रत्यक्ष तौर पर सवाल खड़े किए गए। बलात्कारी के मामले में उसका परिवार, व्यवसाय, प्रतिष्ठा, दबदबा और किसी तरह की आपराधिक पृष्ठभूमि का *न* होना काफी मायने रखता है जबकि पीड़ित के मामले में उसका आपराधिक प्रवृति का न होना कोई मायने नहीं रखता। कोशिश रहती है अगर पीड़ित महिला किसी भी दृष्टि से आरोपी से कमजोर हो तो बलात्कार के लिए महिला को ही किसी तरह दोषी ठहरा दिया जाए या फिर उसके मनोबल पर चोट की जाए। दिल्ली के मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज की छात्रा से हुए बलात्कार की घटना (15 नवंबर, 2002) के बाद भी मीडिया ने धीमे से यह टिप्पणी की कि *बलात्कार के हफ्ते भर बाद ही पीड़ित युवती कॉलेज की परीक्षा में बैठ गई।* मीडिया को सोच शायद अब भी यह है कि बलात्कार पीड़ित युवती का इतनी जल्दी '*सामान्य*' दिखना असामान्य है। बेशक मीडिया की तेजतर्रार रिपोर्ताज की वजह से अपराधी जल्द ही पकड़ा गया और एक साल के अंदर ही उसे सजा भी दे दी गई लेकिन यह भी सच है कि लड़की के पिता को इस दौरान मीडियाकर्मियों से हाथ जोड़कर गुहार लगानी पड़ी थी कि वे लड़की की जिंदगी में दखलअंदाजी बंद कर दें। बाद में इसी लड़की को जब *साइकोसिस* नामक बीमारी हो गई तो मीडिया में इस पर कहीं मामूली जिक्र तक नहीं होता। महिलाओं की प्रगति में दृश्य और मुद्रण मीडिया की संभव भूमिका पर केन्द्रीय सरकार ने फरवरी 1995 में प्रेस परिषद् के सम्मुख कुछ विचारों को भेजा। परिषद ने यह रिपोर्ट 8 जनवरी, 1996 को

[11] Carter, Cynthia, Branston, Gill & Allan, Stuart: News, Gender and Power, Routledge, London, 1995

[12] Hewitt, D. Kidd & Osborne, Richards: Crime and the Media-The Post Modern Spectacle, Pluto Press, London, 1995

स्वीकार की। महिलाओं के लिए महाराट्र सरकार की नीति की सिफारिशें को रेखांकित करते हुए तथा इनसे सहमत होते हुए, भारतीय प्रेस परिषद ने 17 अधिक सिफारिशें कीं जिनमें से प्रमुख हैं -

(क) महिलाओं पर अत्याचार के समाचार प्रकाशित किये जाने चाहिए परंतु उन्हें सनसनीखेज न बनायें।

(ख) मीडिया के प्रयास बिना इस प्रकार होने चाहिए कि महिलाओं की सकारात्मक उपलब्धियों को उजागर किया जाये

(ग) नैतिक आचार में आधुनिकता की ओर सिखाने की अश्लीलता और अभद्रता का मुकाबला करते हुए जांच की जानी चाहिए।

(घ) भारतीय प्रेस परिषद को महिलाओं की अवमानना के आरोपों पर लायी जाने वाली शिकायतों पर विचार की प्रक्रिया को प्राथमिकता देनी चाहिए और मार्ग निर्देश आदि बनाने चाहिए।[13] लेकिन नियमों और असल कार्यान्वयन के बीच अब भी एक गहरा फासला है।

4.6 महिला अपराध रिपोर्टिंग – दशा से दिशा तक

यहां मुद्दा यह भी है कि महिलाओं या बच्चों से होने वाले संगीन अपराधों को कवर करने वाले पत्रकार कौन हैं, वे कहां से उगकर आए हैं, उनकी योग्यताएं और क्षमताएं क्या हैं, उनके वर्ग आधारित पूर्वाग्रह क्या हैं? आमतौर पर मीडिया संस्थानों में मीडिया कानून की क्लासों को बहुत गंभीरता से नहीं लिया जाता। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में खास तौर से मीडिया की तथाकथित पढ़ाई कैमरे के सामने दिखाई देने की कसरतों में ही सिमट कर रह जाती है और एक जल्दबाज समाज को और भी मजबूत आधार देती है। मीडिया महिला के साथ हुए अपराध को या तो बहुत बौना बना देता है या फिर दयाकार। यहां सारगर्भित पत्रकारिता के आसार कम ही दिखाई देते हैं।

यहां सामान्य कुछ भी नहीं है। किसी भी अपराध से जुड़े तमाम कार्यक्रमों में जगह और रंग भरने के लिए बलात्कार या किसी भी तरह का यौन अपराध सबसे ज्यादा काम में आता है। इस संगीन अपराध की रिपोर्टिंग में गंभीरता की आंशिक उपस्थिति त्रासदी को बढ़ा देती है। ऐसे सोचने

[13] *hi.wikipedia.org/wiki/भारतीय प्रेस परिषद*

की बात यह भी है कि क्या मीडिया का काम तात्कालिक खबरनामा पेश करना भर ही है या संवेदनशील मामलों को उनके सिरे तक पहुंचाना भी? बलात्कार-धमाके-अपराध-इन सब पर क्षणिक तात्कालिक-टीआरपी आधारित रिपोर्टिंग के बीच झूलते-झूलते भूलना अब हमारी फितरत में शामिल होने लगा है। ऐसे अपराधों की कवरेज को लेकर गंभीर शोध, शिक्षण और प्रशिक्षण का काफी अभाव है। इसके अलावा गलत रिपोर्टिंग होने पर किसी सजा की आवाज सुनाई नहीं देती। भारत का सूचना और प्रसारण मंत्रालय हो या फिर भारतीय प्रेस परिषद ऐसी शिकायतों पर प्रतिक्रिया देने या फिर सही-सटीक कदम उठाने में वे एक लंबा समय लगा देते हैं। यह समस्या की शुरूआत भी है और उसका अंत भी।

4.7 महिला पत्रकारों–पत्रिकाओं से जुड़ी रोचक जानकारियां

इतिहास साक्षी है कि भारत में महिला लेखन की शुरूआत छठी शताब्दी ईसा पूर्व से ही हो गई थी। इतिहास में उसका प्रथम उल्लेख उन बौद्ध भिक्षुणियों की रचनाओं से मिलता है, जिन्हें महात्मा बुद्ध ने कठोर नियमों के साथ अपने मठ में शामिल किया था। इस प्रकार भारत में महिला लेखन की एक दीर्घ और समृद्ध प्रथा पूर्व से ही विद्‌घ्मान है। ऐतिहासिक दस्तावेजों में भारतीय लेखिका का पहली बार उल्लेख उन बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में मिलता है जो बौद्ध संघ में शांति और मुक्ति की तलाश में आयीं थीं, किन्तु आरंभ में महात्मा बुद्ध उन्हें अपने संघ में शामिल करने के इच्छुक न थे, पर कालांतर में वे इस पर सहमत हो गए और उन्होंने उन पर कठोर शर्त थोप दी थी।

संसार की प्रथम नारी पत्रकार होने का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका की निवासी *एनी न्यूपोर्ट रॉयल* को जाता है। उन्होंने 62 वर्ष की अवस्था में अमेरिका से 'पाल प्राई' नामक वीकली समाचार पत्र निकाला। भारत में निस्संदेह महिला पत्रकारिता के जनक होने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को जाता है। उन्होंने 1874 में काशी से 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया था। स्वाधीनता आंदोलन के वक्त विजयलक्ष्मी पंडित और उमा नेहरू की 'स्त्री दर्पण' और 'दीदी' में रचनाएं छपती थीं। इसके अलावा 'आर्य महिला', 'कमला', 'भारत महिला', 'भारत हितनारी', 'स्त्रीशिक्षा', 'कन्या', 'मनोरंजन' आदि पत्र पत्रिकाएं 1914 ई तक प्रकाशित होती रहीं।

अब तक की खोज के आधार पर श्रीमती हेमंत कुमारी को पहली महिला संपादक होने का

गौरव प्राप्त ह□महिलाओं द्वारा महिलाओं के लिए 1888 ई में प्रकाशित पहली महिला पत्रिका 'सुगृहिणी' की संपादक थीं। वह नवीन चन्द्र राय की सुपुत्री थीं तथा ब्रह्म समाज के आदर्शों और सिद्धांतों से प्रभावित थीं। 1889 में लाहौर से 'भारत भगिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसका संपादन बरि□स्टर रोशन लाल की पत्नी हरदेवी ने किया। 1909 ई में प्रयाग से 'स्त्री दर्पण' मासिकी का संपादन रामेश्वरी नेहरू ने किया। 1909 में ही प्रयाग से 'स्त्रीधर्म शिक्षक' और 1911 ई में 'स्त्री चिकित्सक' का प्रकाशन हुआ। 1911 ई में देहरादून से विद्यावती देवी के संपादन में 'महिला हितकारक' नामक पाक्षिक समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। 1912 में गोपाल देवी ने 'गृहलक्ष्मी' पत्रिका का संपादन किया। उन्हीं दिनों सुदर्शनाचार्य बीए ने गोपाल देवी से विधवा विवाह किया। इसके बाद उनका नाम भी पत्रिका में जाने लगा। 1913 में यशोदा देवी ने 'कन्या सर्वस्व' मासिकी का प्रकाशन किया। 1928 ई में जानकी देवी 'विशारद' ने वारणसी से 'बालिका' पत्रिका का प्रकाशन किया। 1938 में कोलकाता से महिला पत्रिका का प्रकाशन हुआ। 1945-46 में वर्धा से 'महिला श्रम' का प्रकाशन हुआ। कला देवी ने 1947 में 'माला' नामक मासिकी पत्रिका का संपादन किया। इसमें सिलाई, कढ़ाई बुनाई, कसीदाकारी, शिल्प के बारे में छपता था।

इसके अलावा 1920 में छपरा से 'महिला दर्पण', 1921 में फतेहगढ़ से 'महिला संसार', 1924 में अलीगढ़ से 'महिला सर्वस्व', 1930 में लाहौर से 'शांति', 1940 में प्रयाग से 'दीदी', 1946 में पटना से 'मोहिनी', 1949 में दिल्ली से 'रूपरानी', 1948 में लखनऊ से 'नारी', 1940 में प्रयाग से 'जीजी', 1940 में ही मंदसौर मप्र से 'आर्य महिला', 1951 में मुंबई से 'सेविका', 1970 में दिल्ली से 'घर-आंगन', 1984 में दिल्ली से 'वामा' जस□ पत्रिकाएं निकाली गईं जो बाद में बंद भी हो गईं।

दूसरी ओर, 'मनोरमा' (पाक्षिक 1924), 'जान्हवी' (मासिक 1966), 'गृहशोभा', 'गृहलक्ष्मी', 'बेटी', 'महिला डाकिया', 'वनिता' और 'मेरी सहेली' जस□ पत्रिकाएं आज भी काफी लोकप्रिय हैं।

****

4.8 सारांश

महिला आंदोलन की टंकार के बीच मीडिया एक बड़े औजार के तौर पर उभरा ह और उसने हर तरह के आंदोलन की दशा और दिशा तय की ह मीडिया के विमर्शों के केंद्र में महिला और पूंजी हमेशा से रहे हैं। पूंजी ने जहां मीडिया के टिके रहने की शर्तों को पूरा किया ह, वहीं महिला ने सामाजिक जमीन को तय्यार किया ह हरेक माध्यम ने महिला की व्याख्या कुछ अलग ढंग से की ह दूरदर्शन या आकाशवाणी पर आती एक व्यवस्थित महिला हो या निजी टीवी चैनल की आकर्षक महिला या फिर सामुदायिक रेडियो को संभालती एक जिम्मेदार महिला सभी जगहों पर – एक अलग बिंब उभरता हुआ दिखता ह जो स्त्री विमर्श के नए मुहावरे गढ़ता ह मीडिया में महिलाओं का चित्रण समाज के हर पहलू को परिभाषित करता ह 70 के बाद से मीडिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी और बीते 40 वर्षों में कीर्तिमान दर कीर्तिमान बना डाले। चाहे मनोरंजन की दुनिया हो या फीचर का संसार, न्यूज की मारामारी हो या विशेष बीट की रिपोर्टिंग सभी क्षेत्रों में महिलाओं का डंका बज रहा ह चुनौतियों की बीच महिलाओं ने जगह बनाई। चैनलों ने महिलाओं पर होने वाले अपराधों की खबरों को चाशनी में भी डुबोया और कभी-कभी मर्यादाएं भी तार-तार कीं। इसके लिए चैनलों की आपसी प्रतिस्पर्धा जिम्मेदार ह

4.9 शब्दावली

महिला विमर्श : महिलाओं की स्थिति को लेकर जब विद्वानों द्वारा चिंतन-मनन किया जाता ह साथ महिलाओं से जुड़े मसलों पर भी बेबाकी से राय रखी जाती ह

गृहिणी : नारी को गृहिणी कहा जाता ह वह घर के कामकाज में अनुशासित ढंग से हाथ बटाती ह और घर के सभी सदस्यों का ख्याल भी रखती ह

4.10 बोध प्रश्न

1. औरत के उत्थान के बिना समाज का उत्थान संभव नहीं, उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

2. टीवी पर खबर पढ़ने की दुनिया में महिलाओं ने कब कदम रखा, स्पष्ट करें।

3. महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों के संदर्भ में मीडिया रिपोर्टिंग का स्तर उदाहरण देते हुए समझाएं।

4. महिलाओं से जुड़े पहलुओं को मीडिया सनसनीखेज क्यों बनाती ह, स्पष्ट करें।

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मीडिया में महिलाओं की रिपोर्टिंग की सीमाएं और नियम क्या हैं। समझाएं।

2. 70 के दशक के बाद मीडिया में महिलाओं ने झंडा गाड़ा, उदाहरण देकर समझाएं।

3. संतुलन बनाने के लिए मीडिया में महिलाओं का कवरेज आवश्यक ह, लिखें।

4. अपने आसपास किसी महिला प्रोफेशनल (डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, कलाकार या अन्य) का साक्षात्कार करें।

4.12 संदर्भ ग्रंथ/उपयो सामग्री

1. पांडेय, पृथ्वीनाथ (2004), पत्रकारिता : परिवेश और प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. फेमिनिस्ट मीडिया स्टडीज, सेज, 2006

3. http://www.indiatogether.org/2010/mar/ajo-gendrep.htm 4.
4. न्यूज कल्चर – स्टूअर्ट एलन, ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004
महिलाओं ने जीती खबर पढ़ने की जंग 13 ,वर्तिका नन्दा -फरवरी ,2011दनिक हिंदुस्तान
5. Hewitt, D. Kidd & Osborne, Richards: Crime and the Media-The Post Modern Spectacle, Pluto Press, London, 1995

ईकाई-5

पर्यावरण और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 पर्यावरण पर एक दृष्टि

5.3 देश और विदेश का पर्यावरण

5.4 प्रकृति व पर्यावरण संरक्षण के सद्प्रयास

5.5 मीडिया की चुनौतियां

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास प्रश्न

5.8 संदर्भ सामग्री

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

-बता सकेंगे कि देश में पर्यावरण के हालात क्या हैं।

-समझा सकेंगे कि पर्यावरण के मसलों को लेकर मीडिया कितना संजीदा ह□

-स्पष्ट कर सकेंगे कि लोगों ने पर्यावरण को बिगाड़ने और उसे बचाने में कितनी भूमिका निभाई।

5.1 प्रस्तावना

मीडिया ने जिन सामाजिक सरोकारों की ओर दुनिया भर में सबसे अधिक ध्यान आकर्षित किया है उनमें से एक है प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण। क्या प्रिंट क्या इलेक्ट्रॉनिक क्या परंपरागत और क्या डिजिटल- हर मीडिया ने इस मुद्दे के प्रति जागरूकता जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रकृति के संरक्षण और पर्यावरण की ओर सबसे अधिक ध्यान खींचा 'राशेल कार्सन' की पुस्तक 'साइलेंट स्प्रिंग' ने जो सन् 1962 में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशित होते ही कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग पर तूफान उठ खड़ा हुआ। पुस्तक में लेखिका ने कीटनाशकों से हो रहे प्रकृति के विनाश का बेबाक वर्णन किया था। आइए, देखते हैं, क्या है प्रकृति और पर्यावरण और इसे बचाना क्यों जरूरी है

5.2 पर्यावरण पर एक दृष्टि

हमारे चारों ओर की दुनिया हमारी प्रकृति है यानी वह सब कुछ जो हम अपने चारों ओर देखते हैं मगर जिसे हमने नहीं रचा, वही प्रकृति है जो मनुष्य ने रचा, जिससे उसकी सभ्यता का विकास हुआ, वह संस्कृति कहलाती है इसलिए हमारी पृथ्वी पर मौजूद सभी दृश्य और अदृश्य जीवधारी, मिट्टी, पत्थर, पहाड़, नदियां, झरने, झील-तालाब, समुद्र, हवा, पानी, कोहरा, बादल, वर्षा सब कुछ प्रकृति का अभिन्न अंग हैं। हमारे चारों ओर की प्रकृति ही हमारा पर्यावरण है

याद रखिए, विशाल ब्रह्मांड के असंख्य सितारों और ग्रहों-उपग्रहों में से सिर्फ हमारा ग्रह है जिसमें जीवन की धड़कन चल रही है सितारों के विशाल महासागर में यही एक नखलिस्तान है जहां जीवन पनपा। हमारी यह अनोखी पृथ्वी करीब 4.55 अरब वर्ष पहले बनी। पहले यह आग का धधकता गोला था। धीरे-धीरे यह ठंडी हुई, सिकुड़ी-सिमटी और इस पर समुद्र, पहाड़, मैदान और घाटियां बनीं। इसके सागरों में जीवन पनपा। एक कोशिका वाले जीवों ने जन्म लिया। किसी कोशिका में हरा क्लोरोफिल बन गया जिससे आगे चल कर वनस्पतियों, पेड़-पौधों का जन्म हुआ। दूसरे प्रकार की कोशिका से प्राणियों का विकास हुआ।

उपजा मानव

पेड़-पौधों ने धरती पर हरियाली फैला दी। हरियाली ने वायुमंडल में प्राणवायु घोल दी। उस प्राणवायु में सांस लेते हुए कुछ प्राणी सागरों से धरती पर आए। धीरे-धीरे धरती पर जीवन के नाना रूप पनप उठे। जल, थल और आकाश में जीवन की हलचल शुरू हो गई। इनमें जीवमंडल बन गया। उन्हीं असंख्य जीवों के बीच कपियों यानी बड़े वानरों का विकास हुआ। उनमें से आगे चल कर कोई कपि धीरे-धीरे अपने दोनों पैरों पर खड़ा हो गया और हमारा यानी आधुनिक मानव का पुरखा बन गया।

हमारा वह पुरखा गुफाओं में रह कर कंद-मूल और फल खाकर जीवनयापन करने लगा। पत्थर के हथियार बना कर जानवरों का आखेट करने लगा। तब उसके चारों ओर घने, हरे-भरे जंगल थे। विस्तृत मैदान और दलदल थे। नदियां, झरने और सागर थे। दो पैरों पर खड़ा वह कपि विकास करते-करते मानव बन गया। अपनी बेहतर बुद्धि के बलबूते पर वह विकास की दौड़ में अन्य जीवों से आगे निकल गया। उसके चारों ओर 'प्रकृति' अपने असली रूप में मौजूद थी। यानी, वह था और उसे शरण देने वाली, उसका पोषण करने वाली मां प्रकृति थी। लेकिन, तभी उसने प्रकृति का दोहन शुरू कर दिया। वह प्रकृति का उपभोग करने लगा और उपभोक्ता बन गया। चीजों पर कब्जा जमाने लगा। भूमि हथियाने लगा। उपभोग करना ही उसके लिए विकास का रास्ता बन गया। उसने प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा जमाया। पशुओं को पकड़ कर अपने काम में लगा लिया। धरती को जोत कर उसमें खेती करने लगा।

कैसे फैला जहर

इस तरह जंगल कटने लगे। खेती का रकबा बढ़ने लगा। फिर गांव बने, नगर बने, शहर और महानगर बनते गए। भोजन की कमी नहीं थी। बस्तियों, शहरों में घर बसे, सुरक्षा मिली और आबादी बढ़ने लगी। गांव, शहर फैले तो जंगल सिमटने लगे। धीरे-धीरे कंक्रीट के जंगलों का जाल फैलता गया। आबादी बेहिसाब बढ़ती गई और प्रकृति का दोहन चरम पर पहुंच गया। औद्योगिकीकरण ने इसे और भी बढ़ा दिया। कल-कारखाने, जल, थल और वायुमंडल में जहरीला धुवां उगलने लगे। विकास का कचरा चारों ओर फैलने लगा।

कूड़े-कचरे और कीटनाशकों से भूमि प्रदूषित हो गई। हवा में जहरीला धुवां घुल गया। सदानीरा नदियां और साफ-सुथरे तालाब दूषित हो गए। यानी, विकास की दौड़ में स्वयं हमने न केवल प्रकृति

का अंधाधुंध दोहन किया ह बल्कि उसे बुरी तरह प्रदूषित भी कर दिया ह हम यह भूल गए हैं कि हम स्वयं भी प्रकृति का ही एक हिस्सा हैं। प्रकति मां ह और हम सभी जीवधारी उसकी गोद में पनप रहे हैं। हम शायद भूल गए कि प्रकृति को क्षति पहुंचाने पर हम सभी जीवधारियों को उसका गंभीर नतीजा भुगतना होगा। बाढ़, सूखा, भूस्खलन, मौसमों के समय में बदलाव, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग यानी वैश्विक तपन, भूमि की उर्वरता में कमी, जीव-जातियों का विलोपन, खाद्यान्नों का संकट, सागरों में फैलते तेल से समुद्री जीवों के जीवन का संकट, सूखती नदियां, पिघलते ग्लेशियर....यह सब प्रकृति से छेड़छाड़ के ही दुष्परिणाम हैं।

इन पर मीडिया हमेशा से ही सचेत करता आया ह लेकिन परिणाम आज तक संतोषजनक नहीं मिल पाए हैं। प्रकृति की जिस गोद में हमें आश्रय मिला, जिसमें हम पनपे, उसकी पूरी सुरक्षा हमने नहीं की। उसका संरक्षण नहीं किया। नतीजा आज हमारे सामने ह हमारी करतूतों के लिए प्रकृति कई तरह से हमें चेतावनी दे चुकी ह इसलिए समय रहते हमें चेतना होगा। प्रकृति को बचाने के प्रयास करने होंगे। मीडिया के साथ-साथ हमें भी सचेत रहना होगा।

उपभोग या संरक्षण

सच्चाई तो यह ह कि हमारे पास जो कुछ भी ह वह हमें प्रकृति ने ही दिया ह और, प्रकृति केवल यह चाहती ह कि हम उपभोग के बजाय उसका संरक्षण करें। अगर, उसके खजाने से कुछ लें तो उसे लौटाएं भी। हम इसके संरक्षक हैं। हमें ही इसका संरक्षण करना ह पर जरा, दिल पर हाथ रख कर बताइए, क्या हम सचमुच इसका संरक्षण कर रहे ह? हमारी करतूतों से प्रकृति का कितना विनाश हुआ ह यह किसी से छिपा नहीं ह हम सब आज प्रकृति का कोप भोग रहे हैं। जहां हरे-भरे जंगल उजाड़ कर हमने अपने शहर बसा दिए, वहां के प्रदूषित हवा-पानी, कर्कश कोलाहल, और गला-काट प्रतियोगिता में जुटी अपार भीड़ के बीच आदमी बस बराए-नाम ही जी रहा ह

जंगल, जो हमारे 'हरे फेफड़े' हैं, वे उजड़ते ही जा रहे हैं। घरों के आसपास की हरियाली भी गुम होती जा रही ह जानते हैं, सिर्फ एक पेड़ दूसरों को कितना-कुछ देता ह? वर्षों पूर्व भारतीय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के एक वैज्ञानिक के अनुमान के अनुसारः

2.5 लाख रू. मूल्य की आक्सीजन, 2.5 लाख रू. मूल्य का भू-संरक्षण, 20,000 रू. मूल्य की पशु प्रोटीन, 3 लाख रू. मूल्य की भूमि में नमी, 5 लाख रू. मूल्य का प्रदूषण नियंत्रण, 2.5 लाख रू. मूल्य का पक्षियों व अन्य जीवों को आवास

5.3 देश और विदेश का पर्यावरण

पेड़-पौधों पर ही नहीं, आज प्रकृति में मौजूद जीवधारियों की तमाम जातियों के अस्तित्व पर भी खतरा मंडरा रहा है। कई जातियों के जीव विलुप्त हो चुके हैं। हमारे देश का चीता, एक सींग वाला छोटा गैंडा, पर्वतीय फ़ीजेंट केवल किताबों में रह गए हैं। मारिशस का 'डोडो' पक्षी आज केवल 'डेड एज डोडो' मुहावरे के रूप में शेष रह गया है। अमेरिका का यायावर कबूतर, दक्षिण अफ्रीका का कुआगा, मडागास्कर की एलिफेंट बर्ड भी गायब हो चुकी है। इनके बारे में भी मीडिया ने काफी कवरेज की।

प्रकृति के संरक्षण की पड़ताल करने वाली अंतर्राष्ट्रीय संस्था 'आइ यू सी एन' ने 47,677 जीव जातियों का अध्ययन करके बताया है कि उनमें से 17,291 यानी 36 प्रतिशत जातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। अनुमान है कि हमारी पृथ्वी पर 50 लाख से लेकर 3 करोड़ तक जीव जातियां हैं। इनमें से अब तक वैज्ञानिक केवल 18 लाख के करीब जीव जातियों का पता लगा पाए हैं। इनमें से अब तक जीवों की लगभग 809 प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। 3,325 से भी अधिक जातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। हजारों अन्य जातियों के अस्तित्व पर भी खतरा मंडरा रहा है। जीवधारियों के साथ ही कल तक कल-कल, छल-छल बहती नदियां सूख रही हैं। जीवनरेखा की तरह बहती सदानीरा नदियां गंधाते नालों में बदल गई हैं। भूमि का दोहन करते-करते उसकी उर्वराशक्ति खत्म होती जा रही है। भू-जल के भंडार सूख रहे हैं। भूमि से जितना जल खींचा गया, उसकी भरपाई नहीं हुई। पहाड़ों में जंगल सफाचट हो रहे हैं। वहां हरियाली का विनाश करके होटल, रिजार्ट और आमोद-प्रमोद के अन्य ठिकाने बनाए जा रहे हैं।

आइए, प्रकृति और पर्यावरण के दो दृश्यों की कल्पना करते हैं-

दृश्य एक - सुबह हुई। हरी-भरी वृक्षावलियों के पीछे से सूरज उगा। पक्षियों ने अपने नीड़ों से निकल कर हवा में पंख पसारे। भोर की शीतल बयार बहने लगी। इधर चिड़ियों का कलरव और उधर नदी-निर्झरों की कलकल-छलछल। चारों ओर प्राणदायिनी हवा और नदी-स्रोतों का निर्मल जल। वन-प्रांतरों में हवा के झोंके के साथ झूमते पेड़-पौधे और उनके बीच वन्य जीवों तथा असंख्य कीट-पतंगों की दुनिया। जीवनदायिनी आबोहवा के बीच प्रकृति की गोद में जीवन का स्पंदन!

दृश्य दो - स्वप्न टूटता ह तस्वीर बदलती ह न कटते हैं। हरे-भरे पेड़ धराशायी होते हैं और धीरे-धीरे मकानों, कारखानों और फैक्ट्रियों के रूप में सीमेंट व कंक्रीट का जंगल उभरने लगता ह धरती के सीने पर काली सपाट लकीरों की तरह पक्की सड़कों का जाल बिछ जाता ह कल-कारखानों की चिमनियां लगातार काला, जहरीला धुआं उगलने लगती हैं। सड़कों पर धुआं फैलाती मोटरगाड़ियां भोंपुओं का कर्कश शोर मचाने लगती हैं। कल-कारखाने नदियों के निर्मल जल में विष वमन करने लगते हैं। प्रगति का पहिया घूमता ह जल, थल तथा आकाश में प्रगति का जहर फैल जाता ह धीरे-धीरे कुछ भी शुद्ध नहीं रहता-न धरती, न हवा, न पानी। धरती के सीने में कीटनाशकों का ज़हर घुलने लगता ह नदियों का पानी भी प्रदूषित होने लगता ह इस तरह हमें प्रकृति द्वारा पृथ्वी पर पनपने के लिए दी गई जीवनदायिनी आबोहवा धीरे-धीरे दूषित होने लगती ह

आज भी प्रदूषण जारी ह कल-कारखाने, मोटरकारें, भट्टियां और चूल्हे हवा में लगातार धुआं उगलते जा रहे हैं। वह धुआं-जिसमें कार्बन डाइआक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड जैसी जहरीली गैसें होती हैं। सड़कों पर दिन-रात दौड़ती मोटरकारें कोई कम नुकसान नहीं कर रही हैं। कार के पेट्रोल इंजन से निकलने वाली कार्बन मोनो आक्साइड गैस से सिरदर्द हो सकता ह, मतली आ सकती ह, आंखों के आगे अंधेरा छा सकता ह और खून में प्राणवायु आक्सीजन की कमी हो सकती ह मोटर कारों के अधजले या न जले हुए ईंधन के अवशेष अर्थात् हाइड्रोकार्बन भी धुएं में निकलते हैं जिनसे कैंसर का खतरा रहता ह अनुमान ह कि एक कार साल भर में एक किलोग्राम सीसा हवा में छोड़ती ह सीसा जहर ह इससे हड्डियां गलने लगती हैं। एक अनुमान यह भी ह कि कार को 960 किलोमीटर चलने के लिए जितनी आक्सीजन चाहिए, मनुष्य को एक वर्ष तक सांस लेने के लिए उतनी आक्सीजन की जरूरत पड़ती ह

जहरीला हुआ वातावरण

कल-कारखानों के आसपास वातावरण में सल्फर डाइआक्साइड गैस की मात्रा काफी होती है। फाउंड्रियों में आर्सेनिक खनिजों का उपयोग होता है, इसलिए उनके आसपास विषैली आर्सेनिक वाष्प, ऐल्युमीनियम और सुपर फास्फेट बनाने वाले कारखानों के पास जहरीला फ्लुओराइड धुआं और जहां पायराइट का उपयोग किया जाता है वहां सल्फर डाइआक्साइड जैसी जहरीली गैस हवा में घुल-मिल जाती हैं। हालत यह है कि आज बंबई, कलकत्ता मद्रास, बंगलूर, पुणे, दिल्ली और कानुपर जैसे शहरों में हवा के दूषित हो जाने के कारण फेफड़ों का कैंसर, खांसी, दमा, अंधापन और बहरापन आदि बीमारियों का खतरा बढ़ गया है। मनुष्य ही नहीं, पेड़ों का भी दम घुट रहा है। विषैले धुएं से बने धूम-कुहासे के कण हवा में फैले जाते हैं। फिर ये विषैले कण पत्तियों पर जमा होते हैं जिसके कारण उनके नन्हे छिद्र बंद हो जाते हैं। वे ढंग से न तो सूरज की रोशनी से खाना बना पाती हैं और न रात को सांस ले पाती हैं। इस कारण पेड़-पौधे मुरझा कर कमजोर पड़ जाते हैं।

सभी जीवधारियों के सिर पर ओजोन गैस की सुरक्षात्मक छतरी तनी हुई है। वायुमंडल में 10 से 50 किलोमीटर की ऊंचाई पर फैली हुई ओजोन गैस की यह परत इस छतरी का काम करती है। यह हमारा सुरक्षा कवच है। अगर यह न होता तो वैज्ञानिक कहते हैं पृथ्वी पर से शायद जीवन ही मिट जाता। ओजोन की परत असल में सूरज से पृथ्वी की ओर आने वाली खतरनाक अल्ट्रा-वायलेट किरणों को रोक लेती है। इस कारण अल्ट्रा वायलेट किरणों का बुरा असर मनुष्य और अन्य जीवों पर नहीं पड़ता। वर्षों पहले पता लग गया था कि दक्षिणी ध्रुव के आकाश में ओजोन के सुरक्षा कवच में छेद हो गया है। वैज्ञानिक तभी से इस दिशा में लगातार प्रयोग कर रहे हैं । उनका अनुमान है कि यह छेद लगातार बढ़ रहा है। दक्षिणी ध्रुव में वसंत अगस्त से अक्टूबर तक रहता है और इसी बीच वहां आश्चर्यजनक रूप से आकाश में कम-से-कम ओजोन की आधी मात्रा रहस्यमय ढंग से गायब हो जाती है।

टूटती ओजोन पर्त

लेकिन, ओजोन कम क्यों हो जाती है? वैज्ञानिकों का कहना है कि यह भी प्रगति का ही एक पुरस्कार है। कल-कारखाने जो धुआं उगल रहे हैं और कूड़े-कचरे से जो जहरीली गैसें पैदा हो रही हैं, वे ऊपर आकाश में ओजोन की परत पर सीधा वार कर रही हैं। सन् 1974 में पहली बार शेरवुड रालैंड और उनकी सहयोगी मारियो मोलिना से पता लगाया कि कल-कारखानों से धुएं में निकलने

वाली गसें ओजोन की परत में छेद कर रही हैं। वे ओजोन को आक्सीजन में तोड़ रही हैं। इस धुंए में क्लोरोफ्लुओरोकार्बन होते हैं। इनमें से कुछ तो अक्रिय गसें होती हैं और कुछ कम तापमान पर उबलने वाले द्रव्य। अक्रिय होने के कारण ओजोन की परत तक पहुंचने के दौरान इन पर कोई असर नहीं पड़ता। वहां पहुंचने के बाद इनके कण अल्ट्रा वायलेट किरणों से टूट जाते हैं। इस क्रिया में क्लोरीन भी बनती ह। ये क्लोरीन के अणु ओजोन को आक्सीजन में तोड़ देते हैं। क्लोरीन के अणु लगातार ओजोन को तोड़ते रहते हैं। एक बार ओजोन की परत में पहुंच कर ये 10-15 वर्षों तक उसे तोड़ते रहते हैं। अनुमान ह कि क्लोरीन का एक अणु ओजोन के एक लाख अणुओं को तोड़ सकता ह

बहरहाल, इस रासायनिक तोड़-फोड़ से ओजोन की परत पतली हो जाती ह और उसमें छेद हो जाते हैं जिस कारण सूरज से आने वाली अल्ट्रा वायलेट किरणें सीधे पृथ्वी पर पहुंचने लगती हैं। इन किरणों से सूक्ष्म जीव और काई आदि नष्ट हो जाती ह इस कारण कई जीवों का भोजन समाप्त हो जाता ह इन किरणों से त्वचा कैंसर भी हो सकता ह वैज्ञानिकों का कहना ह कि अगर ओजोन परत में 5 प्रतिशत कमी हो जाए तो विश्व भर में 5,00,000 नए लोगों को त्वचा कैंसर हो सकता ह इन किरणों से आंख की पुतली और तारे को भी नुकसान पहुंचता ह इतना ही नहीं, ओजोन की परत पतली होने से वायुमंडल का तापमान भी बढ़ रहा ह लगभग 100 वर्षों से वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे थे कि भूमंडल में गर्मी लगातार बढ़ेगी और इसका कारण होगा वायुमंडल में कार्बन डाइआसाइड गस की मात्रा में लगातार बढ़ोत्तरी। इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और मौसम में गर्मी बढ़ती ही चली गई। गर्मियों में तपा देने वाली गर्मी देख कर दुनिया के कई देश बहुत चिंतित हो उठे हैं।

बढ़ रहा धरती का ताप- आपने 'ग्रीन हाउस' देखा ह? जिस कांच-घर के भीतर पौधे उगाए जाते हैं उसे 'ग्रीन हाउस' कहते हैं। उसके भीतर हर समय बाहर की तुलना में गर्मी अधिक होती ह कारण यह ह कि कांच की दीवारों से सूरज की किरणें अपनी गर्मी के साथ भीतर तो पहुंच जाती हैं लेकिन भीतर की गर्मी बाहर नहीं निकल पाती ह

बस, यही काम कार्बन डाइआक्साइड गस करती ह अगर यह सामान्य मात्रा में वायुमंडल में मौजूद हो तो धरती की सतह से लौटने वाली गर्मी को बांध कर हमारे लिए सही तापमान बनाए रखती ह लेकिन, वायुमंडल में लगातार इसकी मात्रा बढ़ने से यह कंबल का काम करने लगती ह और गर्मी

को रोक देती ह जब गर्मी बढ़ती चली जाती ह और मौसम गर्मी की मार दिखाने लगता ह यही ग्लोबल वार्मिंग ह वैज्ञानिकों का कहना ह कि पिछले 50 वर्षों में भूमंडल का तापमान 0.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ा ह और आशा ह कि अगले 50 वर्षों में 3 से 4 डिग्री सेल्सियस तक और बढ़ेगा। ध्रुवों में 6-8 डिग्री सेल्सियस तक तापमान बढ़ने का अनुमान ह पिछले पन्द्रह वर्षों में ही हमारे वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा करीब 25 प्रतिशत बढ़ चुकी ह औद्योगिक प्रगति की यही दर रही और अगर इसी तरह हम कोयला जला-जला कर अपने आकाश को धुएं से भरते रहे तो आने वाली सदियों में गर्मी को झेलना मुश्किल हो जाएगा। क्या हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को विरासत में यही सौगात सौंप रहे हैं? मीडिया इस बारे में हरदम सचेत करता रहता ह लेकिन शायद उस पर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा जितनी कि जरूरत ह

हिसाब लगाया गया ह कि कार्बन डाइआक्साइड गस अकेले ही कुल गर्मी का लगभग 49 प्रतिशत बढ़ाती ह करीब 20 प्रतिशत गर्मी क्लोरोफ्लुओरोकार्बन रसायनों से बढ़ती ह वनों की आग से जो धुआं निकलता ह उससे भी 10-15 प्रतिशत गर्मी बढ़ती ह शेष गर्मी मीथेन, नाइट्रस आक्साइड आदि गसों की देन हैं। हर साल करीब 6 अरब टन कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल में उगली जाती ह इसकी मात्रा हवा में बढ़ती जा रही ह सन् 1850 में एक लाख भाग हवा में यह गस केवल 270 भाग थी, सन् 1900 में बढ़कर 300 हो गई और उसके बाद सन् 1958 में 318 भाग, सन् 1985 में 345 भाग और उसके बाद 360 भाग तक बढ़ चुकी ह अगले 20-25 वर्षों में विश्व भर में आज की अपेक्षा दुगुनी कार्बन डाइआक्साइड वायुमंडल में पहुंचेगी। हालांकि, पेड़-पौधे लाखों टन कार्बन डाइआक्साइड का उपयोग करके अपने लिए सूरज की रोशनी में भोजन बना लेते हैं। फिर भी, करोड़ों टन कार्बन डाइआक्साइड हवा में मौजूद रहती ह यह बची हुई कार्बन डाइआक्साइड मौसम का मिजाज गर्म करती चली जाएगी। गर्मी बढ़ने से मौसम बदलेंगे। गर्म प्रदेशों में अथाह गर्मी से सूखा पड़ जाएगा।

चेतावनी और चिंताएं

न्यूयार्क का वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट भविष्यवाणी कर चुका ह कि गर्मी बढ़ने से खाद्यान्नों का उत्पादन घटता चला जाएगा। फसलों को भारी नुकसान होगा। भूमध्य सागरीय क्षेत्र पूरी तरह सूखे की चपेट में आ जाएंगे। 'वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट' की रपट में यह भी बताया गया कि अगले 100 वर्षों में

वातावरण का तापमान 1से 5 डिग्री सेल्सियस या इससे भी अधिक बढ़ जाएगा। तापमान बढ़ने से ध्रुवों की बर्फ पिघलेगी। बर्फ पिघलने से नदियों में बाढ़ आएगी। नदियां गाद से दोआबों को भर देंगी। सागरों का जल-स्तर बढ़ जाएगा। सागरतटों पर बसे शहर डूब जाएंगे। मौसम विज्ञानियों का कहना ह कि बंगाल की खाड़ी में ऐसी प्राकृतिक विपदाएं बढ़ती जाएंगी और अनुमान ह कि अगली सदी के अंत तक बांग्लादेश का सारा भूभाग सागर में डूब जाएगा। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान ह कि अगर समुद्र की सतह 1.5 मीटर तक बढ़ जाए तो करीब 2 करोड़ लोग डूब जाएंगे।

नदियों में गाद जमा होने से और पानी बढ़ जाने के कारण गंगा, ब्रह्मपुत्र और नील नदी के किनारे बसे नगर डूब सकते हैं। कलकत्ता शहर को सागर की लहरें घेर लेंगी। हो सकता ह, अगली सदियों में कलकत्ता भारत का वेनिस शहर हो जाए और लोग नावों से आएं-जाएं। खतरा यह ह कि शायद लहरें इस शहर को भी लील जाएं।

ग्लोबल वार्मिंग से ध्रुवों की बर्फ पिघलने के कारण हालैंड, जमन, मालदीव और एटलांटिक महासागर में फला बहामा द्वीप-समूह भी शायद जल-प्रलय की भेंट चढ़ जाएगा। वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड से सहायता प्राप्त एक वैज्ञानिक अध्ययन में इस खतरे की ओर संकेत किया गया ह कि तापमान बढ़ने से जंगलों की हरियाली उत्तर की ओर सिमटने लगेगी और यह टुंड्रा वनों तक नष्ट हो जाएगी। इससे टुंड्रा वनों के लाखों पक्षियों व अन्य जीव प्रजातियों का जीवन संकट में पड़ जाएगा। यह खतरा सन् 2010 तक दिखाई देने लगेगा। सन् 2050 तक पशुओं और पेड़-पौधों की 10 लाख से अधिक जातियां नष्ट हो जाएंगी। सन् 2070 से सन् 2090 तक 40 से 57 प्रतिशत टुंड्रा वनों के नष्ट होने का खतरा ह

ग्लोबल वार्मिंग यानी वैश्विक तपन बढ़ने से आबोहवा बदलती जा रही ह विश्व के अनेक भागों में सूखा पड़ रहा ह ग्लेशियर पिघल रहे हैं। एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका में पानी का भारी संकट शुरू हो चुका ह तापमान बढ़ने से फसलों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा ह नतीजतन उपज घट रही ह वैज्ञानिकों का अनुमान ह कि वर्षा पर आधारित खेती में फसलों की उपज आधी रह जाएगी। इस तरह अकाल का साया फलता जाएगा और विश्व भर में गरीब वर्ग ही नहीं, मध्यम वर्ग भी भूख से बुरी तरह प्रभावित हो जाएगा। समय हाथ से निकल रहा ह विश्व पर घिर रहे ग्लोबल वार्मिंग के इस महा संकट को रोकने के प्रयास अब हमें आपातकालीन स्तर पर शुरू कर देने चाहिए।

बदलती आबोहवा के संकेतों को समझ कर हमें आसन्न कार्बन ग्रीष्म ऋतु के मारक कदमों को रोकना होगा। इसके लिए दुनिया के सभी देशों के नागरिकों के साथ ही नीति निर्धारकों और राजनेताओं को भी एकजुट होकर कार्बन डाइआक्साइड गस और ग्रीनहाउस गसी की नकेल कड़ाई से कसनी होगी।

5.4 प्रकृति व पर्यावरण संरक्षण के सद्प्रयास

चारों ओर कटते हुए पेड़ों और उजड़ते वनों को देख कर आज भला कोई इस बात पर विश्वास कर सकेगा कि कभी लोगों ने अपने इन मूक और अचल हरे साथियों के लिए उनसे लिपट-लिपट कर प्राण दे दिए थे। एक-दो नहीं, 363 पुरूषों और महिलाओं की गर्दनें खेजड़ी के पेड़ों के साथ-साथ काट दी गई थीं। वृक्षों के लिए अपने प्राण देने वाले वे लोग थे राजस्थान के खेजड़ी ग्राम के बिस्नोई। आज से 261 वर्ष पहले सन् 1730 में औरंगजेब का शासन चल रहा था। तब जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने अपना महल बनाने के लिए बिस्नोइयों के खेजड़ली गांव से खेजड़ी के वृक्ष काटने का हुक्म दिया।

उसके आदमी कुल्हाड़ियां लेकर गांव में पहुंचे तो औरतें और पुरूष हरे वृक्षों से लिपट गए। राजा के आदमियों ने पेड़ों के साथ-साथ 69 औरतों और 294 पुरूषों की गर्दनें भी काट डालीं। महाराजा को खबर मिली तो वह दौड़ा आया और पेड़ों को काटने से अपने आदमियों को रोका। उसने बिस्नोइयों के गांवों में हरे पेड़ों को काटने और वन्य प्राणियों के आखेट पर रोक लगा दी। बिस्नोइयों का पेड़ों और वन्य प्राणियों से आज भी वही श्रद्धापूर्ण लगाव ह इसीलिए रेगिस्तान में भी उनके गांवों में खेजड़ी के हरे-भरे वृक्ष लहलहाते हैं। उनके गुरू जाम्भोजी महाराज के उपदेशों में वृक्षों और वन्य जीवों की सुरक्षा का महत्व बताया गया ह बिस्नोई पेड़ों को अपना प्राण मानते हैं।

उत्तराखंड में '<u>चिपको आंदोलन</u>'

पेड़ों को बचाने के लिए सन् 1974 में उत्तराखंड के रैंणी गांव की साहसी मां-बहिनों ने पेड़ों से चिपक कर 'चिपको आंदोलन' को जन्म दिया। वहां रागा और देवदार के घने जंगल में 27 मां-बहिनों ने गौरा देवी की अगुवाई में पेड़ काटने आए ठेकेदार के आदमियों की बंदूक और कुल्हाड़ियों का

सामना किया। उन्हें वहां से हटने के लिए डराया और धमकाया गया। गिरफ्तार करने की धमकी दी गई। मां-बहिनों ने उन्हें समझाया कि जंगल हमारा मायका ह इन्हें काटोगे तो हमारा घर उजड़ जाएगा। ठेकेदार के आदमी ने बंदूक का निशाना साधा तो गौरादेवी गरजीं, ‘ लो मारो गोली। हम अपने पेड़ नहीं कटने देंगे।’ सभी मां-बहिनें पेड़ों से चिपट गईं।

उस दिन रैंणी गांव के पुरूष गांव में नहीं थे। मुआवजा लेने चमोली गए थे। रैंणी गांव की महिलाओं की हिम्मत ने हजारों पेड़ों को कटने से बचा लिया। रैंणी गांव ‘चिपको आंदोलन’ की जन्मभूमि बन गया। गौरादेवी व अन्य मां-बहिनें वृक्षों को बचाने के कारण किवदंती बन गईं। उनका यह साहस जंगल, धरती, वर्षा, पानी और बयार के अटूट रिश्ते के बारे में दुनिया भर में लोगों को सोचने के लिए मजबूर कर गया।

स्वयं उत्तराखंड में इस रिश्ते को दूर-दराज गांवों के कई अज्ञात पर्यावरण प्रहरियों ने खुद अपने बलबूते पर भी मजबूत किया और वे अनोखी मिसाल बन गए। जोशीमठ के तिरोसी गांव की संग्रामी देवी राणा उजड़े गांव की हरियाली लौटा लाईं तो कोटमल्ला, रुद्रप्रयाग के जगतसिंह ‘जंगली’ ने 56 से भी अधिक प्रजातियों के लगभग 40,000 पेड़ों का हरा-भरा जंगल खड़ा कर दिया। डीडीहाट, पिथौरागढ़ के कुंवर दामोदर राठौर ने लाखों पेड़ पनपा दिए तो वनखंडी बाबा ने नैनीताल जिले के नौकुचियाताल इलाके में वृक्षविहीन हिडिंबा पहाड़ी को पेड़-पौधों की हरियाली से भर दिया। ऐसे अनेक अनाम कर्मठ लोग पहाड़ों की हरियाली को बचाने में जुटे हुए हैं। ‘मैती’ आंदोलन लगातार गांव-गांव तक पौधों से प्रेम करने का संदेश फैला रहा ह आज उत्तराखंड के अधिकांश लोग जानते हैं कि जंगल और पेड़ रहेंगे तो वे भी रहेंगे। उन्हें पता लग गया ह कि हराभरा जंगल उन्हें चारा, जलाऊ और इमारती लकड़ी, खाद के लिए पतेल, फल-फूल और छाया ही नहीं पीने के लिए ठंडा पानी और जीने के लिए ठंडी बयार भी देता ह पिछले साठ सालों के दौरान आई यह जन चेतना एक बड़ी उपलब्धि ह भले ही कई गांवों में लोगों ने पर्यावरण का यह पाठ अपनी ही करनी के कारण सीखा। सीखा कि अगर हरे भरे जंगल नहीं रहेंगे तो न पात रहेंगे न पानी, न पक्षी रहेंगे न जानवर, न बादल बरसेंगे न फसलें लहलहाएंगी, सोते सूख जाएंगे और नदियां सूख-सिमट जाएंगी। पहाड़ खौड़ी धारों में बदल जाएंगे और ठंडी बयार खो जाएंगी। इसलिए अब उन्हें हरियाली के साथ जीने का महत्व समझ में आ चुका ह

5.5 मीडिया की चुनौतियां

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में मीडिया के लिए लगातार चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं। लगातार सचेत करने के बावजूद लोग प्रकृति से खिलवाड़ करने पर आमादा हैं। लगभग हर खतरे को लेकर मीडिया लगातार आगाह करता आ रहा ह, लेकिन कोई ठोस हल नहीं निकल रहा ह चाहे पहाड़ हो या नदी नाले सभी जगह प्रदूषण मानकों से आगे की सीमा पार कर चुका ह और जीवनदायिनी नदियों के किनारों पर बसे शहरों के हालात भी बिगड़ते जा रहे हैं, लेकिन सुधार की गुंजाइश नहीं दिख रही ह अखबार से लेकर टीवी चैनलों और पत्र-पत्रिकाओं ने पर्यावरण को लेकर काफी लंबी मुहिम चलाई ह, लेकिन सकारात्मक परिणामों का अभी इंतजार ह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका और ब्रिटेन जैसे बड़े देश भी पर्यावरण को लेकर चिंता जताते हैं,लेकिन सबसे ज्यादा संदूषण का जिम्मा उन्हीं के सिर पर ह पर्यावरण और जलवायु सम्मेलनों को लेकर अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने कई बार अमेरिकी दादागीरी के खिलाफ जहर उगला ह और दोहरे मापदंडों को लेकर सम्मेलनों के दौरान व्यापक प्रदर्शन किये हैं। मीडिया ने भी इन आंदोलनों को खूब हवा दी ह और लोगों को एकजुट होने में मदद पहुंचाई ह हालांकि कई स्तरों पर मीडिया के सामने चुनौतियां भी खड़ी होती हैं। उसे सही मौकों पर मसलों को उठाने की जहमत करनी होगी। इन चुनौतियों पर एक नजर डालते हैं-

1- गैर सरकारी संगठनों की भी मदद मीडिया को लेनी चाहिए जिससे स्थानीय स्तर के छोटे मसलों को निस्तारित करने में मदद मिलेगी। कभी-कभी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्व के विषयों को उठाने में स्थानीय स्तर के मामले दब जाते हैं, ऐसे में स्थानीयता के पुट को ध्यान में रखते हुए ही मीडियाकर्मियों को अपना कार्य करना चाहिए जिससे समाज के हर वर्ग को फायदा पहुंच सके। स्थानीयता से दर्शकों और पाठकों को अलगाव नहीं महसूस होगा और वह इससे जुड़ा अनुभव करेंगे।

2-भ्रामक खबरों से मीडिया को बचना होगा, क्योंकि इसके साथ विश्वासनीयता का संकट खड़ा हो जाता ह विदेशों में हुए शोधों के आधार पर परिणामों का आकलन किया जाता ह पत्रकार केवल निष्कर्षों के आधार पर रपट तैयार कर देते हैं जबकि हकीकत कुछ और ही होती ह पत्रकारों को मनोरंजक या सनसनी पैदा करने वाली रपट से बचना होगा।

3-पर्यावरण से जुड़े हर पहलू की नकारात्मक समीक्षा जितनी जरूरी है उतना ही जरूरी है कि सकारात्मक पहलुओं को भी शामिल किया जाए। जनजागरूकता के मसले पर लोगों को भागीदार बनाने के लिए प्रेरित करना बहुत जरूरी होता है, ऐसे में उनकी प्रशंसा और सक्रियता को उभारना प्रमुख होगा। विभिन्न मसलों पर आवश्यक जानकारी देकर जनता को शिक्षित करना भी सकारात्मक पत्रकारिता माना जाएगा।

4-पत्रकार को पर्यावरण के मसलों पर लिखने के लिए गहन जानकारी जुटानी होगी और उसे लगातार गहराई में जाकर अध्ययन भी करना होगा। क्योंकि उथले ज्ञान पर आधारित खबरें लिखने से जो बात पाठकों या दर्शकों तक पहुंचनी चाहिए वह नहीं पहुंच पाती लिहाजा खबर केवल एक सीमा में ही बंधकर रह जाती है और उसका उचित विस्तार नहीं हो पाता।

5-पत्रकारों को अपने पाठकों और दर्शकों की रुचि के हिसाब से कार्य करना होगा। उन्हें इसके लिए जागरूक करना होगा जिससे कि पर्यावरण के मसलों पर बेबाकी से कार्य हो सके।

6-पर्यावरण से जुड़े मसलों का कोई निश्चित पाठक, दर्शक या श्रोता वर्ग नहीं है, ऐसे में मीडियाकर्मियों का दायित्व है कि वह मसलों को इस प्रकार उठाएं जिससे नया श्रोता, पाठक या दर्शक वर्ग तैयार हो सके। पाठकों में जितनी ज्यादा रुचि जगेगी, पत्रकारों का उतना ही कार्य आसान हो जाएगा।

7-पर्यावरण के समाचारों के प्रस्तुतिकरण में तेजी लाई जाए जिससे लोग इनसे कदमताल कर सकें। इन खबरों में बहुत चटपटा मसाला न लगाकर उनके मूल स्वरूप में ही परोसा जाए तो इसके चमत्कारी परिणाम होंगे।

8- पर्यावरण के मामलों पर लिखने वाले पत्रकारों की आज खासा कमी है, क्योंकि इसमें कॅरियर को लेकर एक प्रकार की अनिश्चितता बनी हुई है, इसी के चलते पत्रकारों पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर लेखनी चलाने से घबराते हैं। हालांकि बीते कुछ वर्षों से इस विधा में कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ी है, लेकिन खुलकर कार्य करने से पत्रकार अभी बच रहे हैं।

9- पर्यावरण के मसलों पर लिखने के लिए सामान्य पत्रकारों को ट्रेनिंग की सुविधा दी जानी चाहिए। जिससे इस विषय पर लेखन करने के लिए उनका भी हाथ खुल सके।

10-पर्यावरण विषय को सामान्य पत्रकारिता की श्रेणी में ही रखा जाना चाहिए। बहुत विशेषीकृत बनाने के फेर में इसकी रिपोर्ट केवल कुछ खास पाठक वर्ग तक ही सीमित रह जाती ह इससे बचना होगा।

****

5.6 सारांश

गर्ज यह ह कि आज हमारा पर्यावरण पवित्र नहीं रह गया ह जिस हवा में हम सांस लेते हैं उसमें विषली गसें घुलती जा रही हैं। हमारी प्रगति ने हमारी आबोहवा को बदल दिया ह हमारे कारखाने वायुमंडल में विषला धुआं उगल रहे हैं और नदियों के निर्मल जल को नापाक कर रहे हैं। हम वनों का सफाया करके धरती की गोद में विष के बीज बो रहे हैं। सचमुच कितनी विडंबना ह विराट सौरमंडल के केवल हमारे इस छोटे से ग्रह में जीवन का स्पंदन हो रहा ह और हम उस जीवन के विनाश का सामान जुटा रहे हैं।

बस इसी ग्रह में वह आबोहवा ह जिसमें प्राण पनपते हैं। लेकिन, हम अपने ग्रह की प्राणदायिनी आबोहवा में जहर घोल कर प्राणों को पनपने से रोक रहे हैं। हमें अपना पर्यावरण पवित्र बनाना होगा ताकि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को विरासत में उनको एक रहने और जीने लायक दुनिया दे सकें। इस काम में हमें मीडियाकी मदद लेनी ही होगी तभी हमारा मंतव्य सफल हो पाएगा और लोगों के लिए जीवन जीने के लायक वातावरण तय्यार हो सकेगा।

5.7 अभयास प्रशन

प्रश्न-1- पर्यावरण को आज किन चीजों से नुकसान पहुंच रहा ह□स्पष्ट करें।

प्रश्न-2 –वातावरण में कौन-कौन सी विष□ ग□ हैं जो पर्यावरण को खतरे में डाल रही हैं।

प्रश्न-3 –संसार के कई देशों पर पर्यावरण के खतरे हैं, समझाएं।

प्रश्न-4 –पर्यावरण को बचाने में लोगों के सद्प्रयासों पर एक लेख लिखें।

प्रश्न-5 –पर्यावरण को लेकर मीडिया के सामने कौन सी चुनौतियां हैं।

5.8 संदर्भ सामग्री

1- हिन्दी में विज्ञान लेखन, संपादक अनुज सिन्हा, सुबोध महंती, निमिष कपूर, (2011) विज्ञान प्रसार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली

2- राष्ट्रीय समाचार पत्रों में प्रकाशित कई आलेखों की कतरन।

ईकाई-6

साहित्य, संस्कृति और मीडिया

ईकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सांस्कृतिक-साहित्यिक पत्रकारिता-परिचय एवं स्वरूप
6.3 वैश्विक साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता का इतिहास
6.4 भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता - विशेषतः हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में।
6.4.1 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पत्रकारिता
6.5 साहित्यिक पत्रकारिता के रूप
6.5.1 सांस्कृतिक पत्रकारिता के रूप
6.6 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता
6.7 लोकतंत्र, सामाजिक आंदोलन और मीडिया
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 बोध प्रश्न तथा उनके उत्तर
6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.12 संदर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को साहित्य, संस्कृति और मीडिया के आपसी रिश्तों के बारे में बताना है। मीडिया का साहित्य और संस्कृति से अनिवार्य रिश्ता है। पत्रकारिता खबरों की रिपोर्टिंग भर नहीं है। यह उस जटिल यथार्थ की खोज भी है, जो ऐसी खबरें पैदा करता है। यह काम साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता करती है।

इस इकाई में छात्र जान सकेंगे

-मीडिया का साहित्य और संस्कृति से संबंध के बारे में।

-साहित्य और संस्कृति का मीडिया पर पड़ने वाले असर के बारे में।

-साहित्य और संस्कृति का मीडिया के लिए कितना महत्व है?

-साहित्यिक-सांस्कृतिक नीतियों और कार्यक्रमों का मीडिया पर कितना असर पड़ता है?

6.1 प्रस्तावना

साहित्य और संस्कृति की तुलना में मीडिया नया है, लेकिन इनका आपसी संबंध न सिर्फ प्रगाढ़ बल्कि महत्वपूर्ण भी है। साहित्य से 'सहित' यानी साथ होने का भाव है। अर्थात जो मनुष्य के साथ रहे वह साहित्य है। साहित्य की परिभाषा बहुत व्यापक है। दूसरी ओर संस्कृति शब्द संस्कार से बना है।

संस्कार का अर्थ है व्यक्ति के मानस पर पड़ने वाला वह प्रभाव जो उसके परिवेश, परिवार और समाज के माध्यम से पड़ता है। हिंदी पत्रकारिता की मूल आत्मा साहित्यिकता-सांस्कृतिकता ही है। बल्कि हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की सांस्कृतिक दृष्टि जिस राष्ट्रीय परिपक्वता का परिचय देती है, उस पर गर्व होता है। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता जैसी विविधता अन्यत्र नहीं है। हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत में ज्यादातर अखबारों-पत्रिकाओं के संपादक साहित्यिक रुचि के ही होते थे। हिंदी में 'पत्रकार' शब्द माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा दिया गया था। इसी तरह 'राष्ट्रपति', 'सर्वश्री', 'मुद्रास्फीति' 'धन्यवाद' जैसे शब्द बाबूराम विष्णु पराड़कर ने दिए। बेशक आज आज हिंदी पत्रकारिता पर साहित्य का उतना प्रभाव नहीं है, लेकिन साहित्य और संस्कृति से काटकर पत्रकारिता की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति के मुद्दे को उठाने वाली पत्रकारिता सांस्कृतिक पत्रकारिता है। सांस्कृतिक पत्रकारिता मूलतः कोई अलग किस्म की पत्रकारिता नहीं है, वह पत्रकारिता के मूल चरित्र में ही समाई रहती है। नाटक, संगीत, चित्रकला केबारे में लिखना भी सांस्कृतिक पत्रकारिता है। और किसी भाषा, लिपि या समुदाय के हाशिये पर चले जाने को रेखांकित करना भी। दरअसल संस्कृति का मुद्दा आज इतना जटिल और व्यापक हो गया है कि उसे बहुमुखी दृष्टिकोण के अलावा समझ पाना कठिन है। इसलिए संस्कृति के साथ अर्थशास्त्र, इतिहास, तकनीकी, विज्ञान और

राजनीति के बीच सेतु बनाने की जरूरत है। सचाई यह है कि सांस्कृतिक मुद्दों पर विचार करने की हमारी अब तक की दृष्टि खंडित और एकांगी रही है। हमारी संस्कृति को खंडित करने में राजनीति का भी बड़ा हाथ रहा है। इस संदर्भ में प्रोफेसर धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी की टिप्पणी बहुत प्रासंगिक है कि हमारी राजनीति ने हमारी संस्कृति को नष्ट कर दिया है। पत्रकारिता के विकास के साथ सांस्कृतिक पत्रकारिता भी विकसित हुई। यहां हम इस इकाई के माध्यम से इन्हीं विषयों पर जानकारी इकट्ठा करना चाहते हैं।

6.2 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता : परिचय एवं स्वरूप

हिंदी पत्रकारिता ने साहित्य और संस्कृति से जितना ग्रहण किया, उतना शायद ही दुनिया की और किसी भाषा की पत्रकारिता में संभव हुआ होगा। हिंदी के पहले पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन का निहित लक्ष्य हिंदी भाषी जनता में जागरण का संदेश देना था। इसी दौर में 'बंगदूत', 'बनारस अखबार', 'मालवा अखबार', 'सुधाकर', 'समाचार सुधावर्षण', 'अल्मोड़ा अखबार', 'सार सुधानिधि', 'भारत मित्र', 'उचित वक्ता' आदि अखबारों ने साहित्यिक पत्रकारिता को शुरुआती आधार दिया। इसके बाद 'कवि वचन सुधा' के साथ भारतेंदु युग की शुरुआत हुई। इस दौर में पत्रकारिता में सामयिकता का दायित्व जुड़ा। स्वाधीनता की मांग इस दौर की पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य थी। 'काशी', 'बिहार बन्धु' 'हिन्दी प्रदीप', 'आर्यमित्र', 'सार सुधानिधि', 'ब्राह्मण', 'हिन्दोस्थान' आदि इस युग के उल्लेखनीय पत्र थे। मालवीय युग में हिंदी की पत्रकारिता का अनेक स्तरों पर विकास हुआ। राष्ट्रीय चेतना, जागरण, देशप्रेम, समाज सुधार की भावना के साथ-साथ राजनीतिक प्रश्नाकुलता भी बढ़ी। इस युग में पंडित अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने 'नृसिंह' और बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 'हितवार्ता' के माध्यम से पत्रकारिता को राजनीतिक विश्लेषणों से जोड़ने की पहल की। 'आर्यावर्त', 'हिन्दी बंगवासी', 'वेंकटेश्वर समाचार', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती' आदि इस दौर के महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएं थीं। इस दौर के पत्रों की राष्ट्रीय चेतना नरमपंथी थी, क्योंकि तब आजादी के संघर्ष का नेतृत्व नरमपंथी कांग्रेसियों के हाथों में था। द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से पत्रकारिता को सांस्कृतिक अनुष्ठान

में बदल दिया। आचार्य द्विवेदी ने नए-नए विषयों पर निबंध लिखवाकर ऐसे लेखकों की एक पूरी पीढ़ी तय्यार की, जिसने आगे चलकर साहित्य और पत्रकारिता में अपनी जगह बनाई। गांधी युग में कांग्रेस की रीति-नीति पत्रकारिता का ध्येय बनी, क्योंकि तब अंगरेजों की गुलामी से देश को मुक्त कराने का बड़ा लक्ष्य सामने था। गांधी जी के आविर्भाव ने पत्रकारिता को एक बड़े मिशन में बदल दिया। शिवप्रसाद गुप्त, बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पंडित लक्ष्मीनारायण गर्दे, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय जैसे युग निर्माता पत्रकारों ने गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन का समर्थन किया। 'प्रताप', 'प्रभा', 'सरस्वती','सुदर्शन', 'समालोचक', 'पाटलिपुत्र', 'चांद', 'माधुरी', 'विशाल भारत','हंस', 'सरोज', 'साहित्य संदेश' आदि इस दौर की महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएं थीं।

6.3 वैश्विक साहित्यिक–सांस्कृतिक पत्रकारिता का इतिहास

कागज और मुद्रण का आविष्कार सबसे पहले चीन में हुआ। पेकिंग गजट या तिंचाओ नाम का पहला समाचार पत्र भी चीन से ही निकला। चीन से मुद्रण कला यूरोप पहुंची। साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता की शुरुआत अखबारों की शुरुआत के साथ ही हुई। यह याद रखना चाहिए कि आधुनिक विश्व में तमाम जनक्रांतियों में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। चाहे अमेरिका की स्वतंत्रता की लड़ाई रही हो या भारत का स्वतंत्रता संग्राम या अफ्रीका में जातीय अस्मिता का संघर्ष- इन सबको वाणी पत्रकारिता ने ही दी।

भारतीय समाज पर ग्लोबलाइजेशन का प्रभाव वैश्विक परिदृश्य समाज और पत्रकारिता को किस तरह प्रभावित करता है, इसका पता ग्लोबलाइजेशन के बाद भारतीय समाज में आए बदलाव से चलता है। भूमंडलीकरण से देश में बड़ी पूंजी आई, मध्यवर्ग को नई आर्थिक नीतियों का लाभ मिला, लेकिन गरीबों का इसका बहुत फायदा नहीं मिला। भूमंडलीकरण से पत्रकारिता में बड़ा बदलाव यह देखने को मिला कि अमीरों की सूची बनने लगी और उन्हें महिमामंडित किया जाने लगा। ग्लोबलाइजेशन के कारण गांवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ा। नतीजतन खेती और उपेक्षित हुई। नकदी फसलों की बढ़ती प्रवृत्ति ने किसानों पर कर्ज का बोझ डाला, और इसी दौर में उनकी आत्महत्याओं का ग्राफ भी बढ़ा। इस दौरान एकल परिवार और मजबूत हुआ, लोगों में खर्च करने

की प्रवृत्ति बढ़ी और विलासिता आवश्यकता में बदल गई। हाशिये पर खड़े लोगों को बेशक ग्लोबलाइजेशन का पूरा लाभ नहीं मिला, लेकिन बदलाव उनमें भी आया। खान-पान और रहन-सहन के साथ उनका नजरिया भी बदला। उनके बच्चे भी अंगरेजी स्कूलों में पढ़ने लगे। जाहिर ह□ ग्लोबलाइजेशन से हमारे समाज में सकारात्मक बदलाव भी कुछ कम नहीं हुआ।

6.4 भारतीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता-विशेषतः हिंदी पत्रकारिता के संदर्भ में।

हिंदी पत्रकारिता का उद्भव 30 मई, 1826 को कोलकाता में युगल किशोर शुक्ल के 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रकाशन के साथ हुआ। 'उदन्त मार्तण्ड' का ध्येय वाक्य था-सूर्य के प्रकाश के बिना जिस तरह अंधेरा नहीं मिटता, उसी तरह समाचार-सेवा के बिना अज्ञानी जन जानकार नहीं बन सकते। यानी हिंदी पत्रकारिता के सूत्रधारों को इसके मर्म की भलीभांति जानकारी थी। पीढ़ी दर पीढ़ी संपादकों ने पत्रकारिता के मानक गढ़े। समाज के सुख-दुख में भागीदारी करते हुए उन्होंने सामाजिक सरोकार को वरीयता दी। लेकिन समाज की तुलना में राष्ट्र की भावना उस दौर में स्वाभाविक ही अधिक थी। इसलिए अंगरेजों की अन्यायपूर्ण नीति के विरोध को उन्होंने ज्यादा महत्व दिया। हालांकि उन्हें इसका भलीभांति अहसास था कि ब्रिटिशों के छल-छद्म, उनकी शोषणकारी नीतियों की कलई खोलने पर नतीजा भुगतने के लिए भी तय□ रहना पड़ेगा। इसके अलावा स्त्री-जागरूकता, जातिप्रथा और छूआछूत-विरोध को भी अखबारों में जगह मिली। चूंकि उन्नीसवीं शताब्दी में ही बंगाल को छोड़कर पूरे देश में नवजागरण हुआ, इसलिए उस दौर के समाचारपत्रों में नवजागरण का संदेश मिलता ह□ उस समय एक ओर पत्रकारिता में जहां विचार-स्वातंत्र्य की नींव पड़ी, वहीं आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था की शुरुआत से जनजागृति आई।

इस युग ने पत्रकारिता को व्यापक साहित्यिक-सांस्कृतिक कर्म के रूप में भी स्थापित करने का काम किया। इसी युग में भाषा के स्तर पर हिंदी अधिक से अधिक रचनात्मक और संप्रेषणीय हो पाई। हिंदी ने अपने विभिन्न स्थानीय स्रोतों से शब्द लेकर खुद को समृद्ध करना शुरू किया। भोजपुरी, अवधी, बुंदेली, ब्रज, राजस्थानी, मारवाड़ी, मालवी, मैथिली, मगही, कौरवी जैसी उपभाषाओं के शब्दों-मुहावरों से हिंदी भाषा और इसकी पत्रकारिता का विकास हुआ। इस दौर में साहित्य की

जनपक्षधरता लौटी, तो सांस्कृतिक स्तर पर जनता की अभिव्यक्ति भी संभव हुई। इस दौर की पत्र-पत्रिकाएं नवजागरण, छायावाद, प्रगतिवाद जैसे साहित्यिक दौरों का गवाह बनीं, तो नाटक, कला, नृत्य, संगीत जैसी कलाओं की भागीदारी भी इसी दौर में संभव हुई। इस युग की पत्रकारिता स्पष्ट अर्थों में साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता की समृद्ध पृष्ठभूमि बनी। इस पूरे दौर में जिन महानुभावों ने साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रकारिता को नई दिशा दी, उनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, महात्मा गांधी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, गणेशशंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराड़कर आदि प्रमुख थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) **:** भारतेंदु हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के पितामह थे। उन्होंने साहित्य को जहां रीतिकालीन रूढ़ियों से मुक्त किया, वहीं पत्रकारिता को समसामयिक बनाया, उसे देशभक्ति से ओत-प्रोत किया। कविवचनसुधा के जरिये हिंदी पत्रकारिता में एक नए युग का सूत्रपात हुआ, तो स्त्री जागरण के लिहाज से बालाबोधिनी पत्रिका का जवाब नहीं था। बाद की पत्रकारिता में सत्ता से टकराने का जो जुनून पैदा हुआ, उसके पीछे भारतेंदु का योगदान सर्वाधिक है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) **:** प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका सरस्वती का 17 वर्षों तक संपादन करने वाले महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषा का प्रसार करने के साथ पाठकों के रुचि परिष्कार और उनके ज्ञानवर्द्धन में योगदान किया। भारतेंदु युग में लेखकों की दृष्टि शुद्धता की ओर नहीं थी, जिसे देखते हुए द्विवेदी जी ने भाषा को शुद्ध करने का संकल्प लिया। उनका समय हिंदी के कलात्मक विकास का नहीं, हिंदी के अभावों की पूर्ति का था। हिंदी गद्य और पद्य की भाषा एक करने के लिए उन्होंने प्रबल आंदोलन चलाया। उन्हीं के प्रयास से हिंदी में अन्य भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद शुरू हुआ।

महात्मा गांधी (1869-1948) **:** गांधी जी की पत्रकारिता सच्चाई, अच्छाई और अहिंसा की पत्रकारिता है। उनका कहना था, पत्रकारिता का लक्ष्य आजीविका कमाना नहीं, बल्कि लोक शिक्षण है। देशप्रेम और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत उनकी पत्रकारिता में समाज के कमजोर तबकेकी चिंता है। राजनीतिक गुलामी से मुक्ति और समाज सुधार के लक्ष्यों के बीच उनकी पत्रकारिता में साहित्य-संस्कृति की चिंता न के बराबर ही रही।

माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) **:** राष्ट्रीय आंदोलन, खासकर महात्मा गांधी के दौर में पत्रकारिता करने वाले माखनलाल चतुर्वेदी ने असंतोष और पीड़ा को स्वर दिया। कर्मवीर ने स्वाधीनता आंदोलन की आंच तेज करने में अग्रणी भूमिका निभाई। निर्भीकता उनकी पत्रकारिता की विशेषता थी। कर्मवीर जिस भाषा में अंगरेजी राजसत्ता से संवाद कर रहा था, उससे अनुमान लगाया जा सकता ह कि भारतीय जनमानस में आजादी पाने की ललक कितनी तेज थी। अपनी पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य, कला और संस्कृति को भी उन्होंने महत्व दिया।

प्रेमचंद (1880-1936) **:** माधुरी, हंस और जागरण जसी पत्रिकाओं के जरिये प्रेमचंद ने राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक असमानता, शोषण और अंगरेजों की दासता से मुक्ति हेतु जागृत किया। प्रेमचंद का समय गांधी के अहिंसात्मक युद्ध का समय था। हंस के अपने पहले संपादकीय (10 मार्च, 1930) में उन्होंने लिखा था-'*हंस भी मानसरोवर की शांति छोड़कर अपनी नन्ही-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए समुद्र पाटने, आजादी की जंग में योगदान देने चला है।*...साहित्य और समाज में वह उन गुणों का परिचय करा ही देगा, जो परंपरा ने उसे प्रदान किए हैं।' उनकी संपादकीय टिप्पणियों में प्रखर राष्ट्रीय चेतना थी, जिस कारण उन्हें अंगरेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

गणेश शंकर विद्यार्थी (1890-1931) **:** विद्यार्थी जी ने अपनी पत्रकारिता के जरिये जनता और बुद्धिजीवियों में नया जोश भरा और आजादी की लड़ाई लड़ रहे लोगों को नया रास्ता दिखाया। कहा जाता ह कि आजादी की लड़ाई को तेज करने में कानपुर के प्रताप कार्यालय का योगदान बहुत अधिक था। उस समय देश का ऐसा कोई आंदोलन नहीं था, जिसने विद्यार्थी जी से प्रेरणा न पाई हो। देश में जागरूकता लाने के लिए उन्होंने 'प्रकाश पुस्तकमाला' का आयोजन किया और देश-विदेश के क्रांतिकारियों की जीवनी प्रकाशित की। क्रांतिकारी भगत सिंह ने भी कुछ समय तक 'प्रताप' में काम किया था।

बाबूराव विष्णु पराड़कर (1890-1955) **:** हिंदी बंगवासी, हितवार्ता, भारतमित्र जसे अखबारों में काम कर चुके बाबूराव विष्णु पराड़कर ने बनारस से दनिक आज का संपादन करते हुए उन्होंने इस अखबार का इस्तेमाल तलवार की तरह किया। उन्होंने हिंदी भाषा को सकड़ों नए शब्द दिए। उनके लिखने की अपनी विशिष्ट शली थी और हिंदी पत्रकारिता को उन्होंने स्वर्णिम ऊंचाई दी। वह हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के सेतु पुरुष थे।

6.4.1 स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पत्रकारिता

हिंदी पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम के समय जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सवाल उठाए थे, उन्हें ही अपनी परंपरा और चिंतन का केंद्र बनाया। छोटे और व्यक्तिगत प्रयासों से लेकर बड़े संस्थागत अखबारों ने जन्म लिया। हिंदी में 'भारत', 'अमृत पत्रिका', 'आज', 'अभ्युदय', 'चेतना', 'हिंदुस्तान' 'जागरण' 'अमर उजाला', 'भास्कर', 'नवजीवन', 'नवभारत टाइम्स', 'लोकसत्ता', 'जनसत्ता' जैसे महत्वपूर्ण दैनिक निकलने लगे। कई साप्ताहिक और पाक्षिक भी निकलने शुरू हुए। भारतीय गणतंत्र ने अपने लिए जो मूल्य और आदर्श अंगीकार किए थे, पत्रकारिता ने उन्हें ही प्रस्थापित किया। आजादी के तत्काल बाद साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता का एक नया युग शुरू हुआ। अज्ञेय के नेतृत्व में दिनमान और डॉ. धर्मवीर भारती के दिशा-निर्देश में धर्मयुग जैसे समाचार-संस्कृति के साप्ताहिकों ने नया इतिहास रच दिया। इसी तरह मनोहरश्याम जोशी और हिमांशु जोशी ने साप्ताहिक हिंदुस्तान, प्रेमचंद के दोनों बेटों श्रीपतराय और अमृतराय ने क्रमशः कहानी और हंस, हैदराबाद से बद्री विशाल पित्ती के नेतृत्व में कल्पना, कोलकाता से भारतीय ज्ञानपीठ के लक्ष्मीचंद जैसे शरद देवड़ा ने ज्ञानोदय और पटना से उदयराज सिंह-रामवृक्ष बेनीपुरी ने नई धारा का प्रकाशन शुरू किया। इसके अलावा नई कहानियां, सारिका, सर्वोत्तम, कादंबिनी, नवयुग, हिंदी ब्लिट्ज जैसे पत्रकारिता के नए प्रतिमान आए। इंडिया टुडे और आउटलुक जैसी पत्रिकाओं ने बाद के दौर में कंटेंट और तकनीक, दोनों के लिहाज से पत्रकारिता की धारा बदली। लघु पत्रिकाओं का तो जैसे आंदोलन ही चल पड़ा। वैचारिक और परिवर्तनकामी इन पत्रिकाओं में पहल, आलोचना, समकालीन तीसरी दुनिया, उद्भावना, वर्तमान साहित्य, हंस, कथादेश, नया ज्ञानोदय, शेष, तद्भव, वागर्थ जैसी पत्रिकाओं में से ज्यादातर चल रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता साहित्य से उतनी ओतप्रोत भले न रही, लेकिन साहित्य और संस्कृति के मुद्दे पर उसने लगातार आवाज उठाई। हिंदी को राजभाषा बना देने के बावजूद जिस तरह उसका विरोध शुरू हो गया था और सरकार अपना दामन बचाने लगी थी, उससे हिंदी पत्रकारिता क्षुब्ध थी। इसी दौर में 'कल्पना' जैसी साहित्यिक पत्रिका आई, जिसका उद्देश्य पत्रिका की संख्या बढ़ाना या ग्राहकों का मनोरंजन करना नहीं, बल्कि हिंदी के स्तर को उन्नत करना था। इसी तरह 'प्रतीक 'ने परंपराओं के तिरस्कार और खंडन को नकारा, तो 'आलोचना' ने साहित्यिक प्रयोगों की आलोचना

की। इस दौर की साहित्यिक पत्रकारिता ने पंचवर्षीय योजना को महत्व दिया, तो खेती-किसानी पर भी कलम चलाई। इसी युग में कला समीक्षा का विधिवत सूत्रपात हुआ। सिनेमा, संगीत, नृत्य, नाटक तथा रूपंकर कला की समीक्षा अपनी संपूर्णता में सच हुई। सूजा के चित्रों से लेकर 'मदर इंडिया' की समीक्षा तक, जीवन में संगीत के महत्व से लेकर समाज और नृत्य जैसे विषयों पर विमर्श हुए।

रघुवीर सहाय ने कल्पना में फिल्मों की समीक्षाएं लिखीं, तो अज्ञेय और श्रीकांत वर्मा जैसे लेखकों ने कलाओं पर लिखा। इस दौर में धर्मयुग और दिनमान ने साहित्यिक-सांस्कृतिक मोर्चे पर सबसे अधिक सक्रियता दिखाई। दिनमान सरकार की भाषा नीति के खिलाफ खड़ी हुई, तो धर्मयुग अंगरेजी के विरोध में मुखर हुई। इन दोनों ही पत्रिकाओं ने नाटकों की स्थिति पर लिखा। इनका सवाल था कि हिंदी के नाटकों में नए प्रश्नों, विचारों और चिंताओं को जगह क्यों नहीं मिलती। धर्मयुग ने बांग्लादेश युद्ध के दौरान महत्वपूर्ण कलाकारों की कृतियों का उपयोग अपने पन्नों पर किया, तो दिनमान ने भारतीय कला की आधुनिकता पर बहसें चलाईं। इस दौर में पूरी तरह नाटकों पर केंद्रित 'नटरंग' जैसी पत्रिका शुरू हुई, तो सिनेमा, नाटक, कला, नृत्य-संगीत पर 'पूर्वग्रह' जैसी पत्रिका निकलने लगी। 'देशबंधु' जैसे अखबार ने फिल्म समीक्षा को समाज से जोड़ा, तो 'नई दुनिया' ने सांस्कृतिक गंभीरता बनाए रखकर साहित्य और अन्य कलाओं की मीमांसा पर बल दिया, जबकि 'रविवार' ने हिंदी सिनेमा पर बहस को संभव बनाया।

दिनमान - दिनमान के माध्यम से अज्ञेय ने हिंदी पत्रकारिता को भाषा और ऐतिहासिक आयाम दिए। यह अज्ञेय जी की दृष्टि का ही परिणाम था कि रघुवीर सहाय, मनोहरश्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और प्रयाग शुक्ल जैसे साहित्यिकार दिनमान से जुड़े। दिनमान ने हिंदी पत्रकारिता को नई भाषा के साथ खबरों के प्रस्तुतिकरण की एक नई कला दी। इसकी राजनीतिक प्रतिबद्धता पर तरह-तरह की चर्चाएं होती थीं। कोई इसे कांग्रेस की पत्रिका बताता था, तो किसी के मुताबिक यह समाजवादी रुझानों की पत्रिका थी। दिनमान में कला-साहित्य का पन्ना सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा देखते थे तो राजनीति का पन्ना बनवारी जी के जिम्मे था, जबकि कानून जैसे मुद्दे पर लक्ष्मीमल्ल सिंघवी लिखा करते थे। संपादक रहते हुए अज्ञेय इसमें न के बराबर लिखते थे। इसके पिछले सप्ताह कॉलम में देश-विदेश की महत्वपूर्ण घटनाओं पर संक्षेप में सटीक टिप्पणी होती थी तो चर्चे और चर्खे में समसामयिक मुद्दों पर महत्वपूर्ण टिप्पणियां की जाती

थीं, जबकि संपादकीय गंभीर विश्लेषण करता दृष्टिसंपन्न नजरिया होता था। इसके हर अंक के आखिरी पन्ने पर एक विदेशी कविता अनूदित होकर छपती थी। दिनमान की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इसने अपने पाठकों को जागरूक और दृष्टिसंपन्न बनाया। अनेक लोग दिनमान से दीक्षित होकर पत्रकार बने।

धर्मयुग : (1947-1989) धर्मवीर भारती ने धर्मयुग के जरिये पत्रकारिता को साहित्य से जोड़ा और इस मिथ को दूर किया कि साहित्य सामान्य व्यक्ति का विषय नहीं हो सकता। उन्होंने देश के सर्वश्रेष्ठ लेखकों को छापने की एक नई परंपरा शुरू की। सांस्कृतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक जानकारियों के साथ आर्थिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक सामग्रियों के साथ धर्मयुग में बच्चों और महिलाओं के लिए भी रोचक-ज्ञानवर्द्धक जानकारियां होती थीं। कन्हैयालाल, रवींद्र कालिया, प्रमोद शंकर, योगेंद्र कुमार लल्ला, मनमोहन सरल, सुरेंद्र प्रताप सिंह आदि को शुरुआती पहचान धर्मयुग ने ही दी। आबिद सुरती ने धर्मयुग के लिए आम आदमी को चित्रित करती एक कार्टून स्ट्रिप (कार्टून कोना/ढब्बूजी) बनाई थी। पत्रिका का स्तर गिराए बिना उसे उत्तरोत्तर लोकप्रिय बनाना भारती जी से ही संभव था। इसमें एक ओर तीर और तुक्का जैसे कॉलम प्रकाशित होते थे, काका हाथरसी की कविताएं छपती थीं, तो दूसरी ओर कला वीथिका में विभिन्न कला-अनुशासनों के व्यक्तित्वों को एक मंच पर लाकर बहस करवाने का गंभीर कर्म भी होता था। व्यावसायिक लाभ-हानि के गणित के बीच ही धर्मयुग में कहानी, नई कविता, अकविता, नवचिंतन, नए सिनेमा पर सार्थक बहसें हुईं। समसामयिकता धर्मयुग का बड़ा गुण था। उसकी प्रसार संख्या सर्वाधिक तब हुई, जब अमेरिका चांद पर आदमी उतारने वाला था और धर्मयुग उसकी ब्योरेवार जानकारी दे रही थी। बांग्लादेश युद्ध में तो भारती जी ने स्वयं जाकर रिपोर्टिंग की थी। इस पत्रिका में सौर ऊर्जा के लिए भी जगह थी और पाक कला के लिए भी गुंजाइश। उस दौर में छपाई के साधन इतने उन्नत नहीं थे, फिर भी धर्मयुग न सिर्फ समय पर आती थी, बल्कि उसमें भाषा और वर्तनी की अशुद्धि भी नहीं होती थी। उस दौर में धर्मयुग में छपना गौरव की बात माना जाता था।

सारिका : टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप की हिंदी कहानी की इस पत्रिका के शुरुआती संपादक हालांकि मोहन राकेश थे, लेकिन इसे प्रसिद्धि की ऊंचाई पर कमलेश्वर ने पहुंचाया। कमलेश्वर ने इसके संपादन के साथ-साथ 'समांतर कहानी' आंदोलन चलाया, जिसमें मराठी के दलित आंदोलन को शामिल

कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। सारिका के संपादन के दौरान कमलेश्वर ने तीखे तेवर दिए और साहित्य व पत्रकारिता के बीच बारीक लकीर खींच दी। उनके दिशा-निर्देश में सारिका सामान्य जन के संघर्ष का शंखनाद कर चुकी थी और उनके संपादकीय आम आदमी को समर्पित होते थे। इस पत्रिका में कमलेश्वर ने लेखकों के संघर्ष को चित्रित करता स्तंभ गर्दिश के दिन छापा, जो बेहद चर्चित हुआ। आपातकाल के दौरान कमलेश्वर ने सरकारी पक्ष के बहिष्कार की एक नई तकनीक ईजाद दी। सारिका के पन्नों के उन अंशों को तब सरकारी नौकरशाही के सामने रखने के बजाय काली स्याही से ढककर अपना विरोध दर्ज किया था। सारिका का महत्व इसमें है कि उसने चर्चित विदेशी कहानियों का अनुवाद कर उसे हिंदी पाठकों के लिए पेश किया। उसके कई विशेषांक बेहद चर्चित हुए। लघुकथा को एक साहित्यिक विधा के रूप में महत्व भी सबसे पहले सारिका ने ही दिया।

रविवार : 'दिनमान' की विचार पत्रकारिता को रविवार ने खोजी पत्रकारिता और स्पॉट रिपोर्टिंग से नया विस्तार दिया। इसके पहले संपादक सुरेंद्र प्रताप सिंह थे। राजनीतिक-सामाजिक हलचलों के असर का सटीक अंदाजा लगाना और सरल-समझ में आने वाली भाषा में साफगोई से उसका खुलासा करके रख देना एसपी की पत्रकारिता की शैली था। आधुनिक हिंदी पत्रकारिता का बीज रविवार में था। उन दिनों हिंदी के अखबार अनुवाद के अखबार हुआ करते थे और साहित्य को छोड़कर सब कुछ अनूदित होता था। उस दौर में हिंदी के अखबारों के लिए अलग से रिपोर्टर नहीं रखे जा सकते थे-और न ही हिंदी में फील्ड रिपोर्टिंग जैसी कोई परंपरा थी। पीआईबी (प्रेस इनफॉरमेशन ब्यूरो) और हिंदी की समाचार एजेंसियों के भरोसे हिंदी पत्रकारिता चलती थी। रविवार ने नई शुरुआत की। अब हिंदी के पत्रकार रिपोर्टिंग के लिए फील्ड में जाने लगे। उस दौर में सांप्रदायिक दंगों की खतरनाक रिपोर्टिंग उदयन शर्मा और संतोष भारतीय ने की। उदयन शर्मा की हिंदी रिपोर्ट्टों का अनुवाद अंगरेजी संडे में छपने लगा। हिंदी पत्रकारिता के लिए इस तरह का यह पहला ही उदाहरण था। माया त्यागी मामले में उदयन शर्मा की रिपोर्ट ने हिंदी के पाठकों को झकझोर दिया था। रविवार में उनका कॉलम प्रथम पुरुष बहुत लोकप्रिय था। बाद में उदयन जी रविवार के संपादक बने।

पहल : चर्चित कथाकार ज्ञानरंजन ने जब पहल का प्रकाशन शुरू किया था, तब अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाएं बंद हो चुकी थीं। साहित्य के अलावा इसने दूरगामी महत्व के तमाम समसामयिक मुद्दों, जैसे सांप्रदायिकता, भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारवाद को जगह दी। मनोरंजन के बजाय सोचने की नई दृष्टि प्रदान करने वाली हिंदी की इस अनूठी पत्रिका ने विश्व साहित्य के क्षेत्र में विलक्षण काम किया, चाहे वह पाकिस्तान का साहित्य हो या बांग्लादेश का या अफ्रीकी देशों का। पहल वाकई इस उपमहादेश में वैश्विक नजरिये के लिए अनिवार्य पत्रिका थी।

जनसत्ता : जनसत्ता का प्रकाशन हिंदी पत्रकारिता में एक नया प्रयोग था। प्रभाष जोशी के नेतृत्व में शुरू हुए इस अखबार ने साहित्य तथा कलाओं के विकास को अपना मुख्य लक्ष्य माना और पीत पत्रकारिता के खिलाफ भी मुहिम चलाई। जनसत्ता की सफलता में विवेकसम्मत दृष्टि के अलावा उसकी खनकती भाषा का भी योगदान रहा। इसने देशज भाषा के नए प्रयोग किए। इस अखबार ने हिंदी की विचारपरक पत्रकारिता की विस्मृत परंपरा को पुनर्जीवित किया। नवें दशक में यह हिंदी का अकेला अखबार था, जिसने कलाओं पर पूरा एक पृष्ठ निकाला। किताबों के लिए भी इसने पूरा पेज दिया। जनसत्ता ने हिंदी पत्रकारिता की भाषा बदली, तेवर बदले और उसे अंगरेजी पत्रकारिता के बराबर ला खड़ा किया। कविता को सर्वाधिक महत्व देने वाले हिंदी के इस अखबार ने आधुनिक हिंदी साहित्य के मिजाज को भी प्रभावित किया। आधुनिक चित्रकला, संगीत और रंगमंच को जनसत्ता में आज भी जगह मिलती ह।

हंस : अगस्त-1986 से अब तक। प्रेमचंद की मौत के पचास साल बाद राजेंद्र यादव ने जब उनकी पत्रिका हंस को पुनर्जीवित करने का बीड़ा उठाया, तब बहुतों को संदेह था कि साहित्यिक पत्रिकाओं के अप्रासंगिक होते जाने के इस दौर में हंस जैसी पत्रिका टिक भी पाएगी या नहीं। लेकिन यह पत्रिका आज 25 साल पूरे कर चुकी ह। हंस ने साहित्यिक पत्रकारिता को नया अर्थ देने की कोशिश की। हंस में छपी कहानियां, लेख और संस्मरण हिंदी पट्टी में सनसनी पैदा करते रहे हैं। पिछले ढाई दशकों में हिंदी की महत्वपूर्ण कहानियां हंस में ही छपी हैं। इसने उन तमाम सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर सवाल उठाए, जो किसी न किसी रूप में साहित्य और समाज को प्रभावित कर रहे थे। इसी दौर में बिहार और उत्तर प्रदेश की बागडोर पिछड़ों-दलितों के हाथों में गई और हंस ने इन राज्यों में बौद्धिक खुराक देने का काम किया। आज महिला, दलित और पिछड़े साहित्य के केंद्र में हैं, तो इसका कुछ

श्रेय हंस को भी ह उत्तर यथार्थवाद, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श आदि जुमले इसी ने चलाए। हंस ने स्थापित मूल्यों पर सवाल उठाए। इसने चार पीढ़ियों को साहित्य में दीक्षित करने का काम किया।

6.5 साहित्यिक पत्रकारिता के रूप

कहानी : कहानी का मौजूदा स्वरूप पश्चिम में विकसित हुआ ह जहां एडगर एलन पो, मोपासां और चेखव आदि ने इसे आधुनिक रूप दिया। आधुनिक काल में यहां इसकी शुरुआत के साथ ही इसे हाथोंहाथ लिया गया। साहित्य की यह सबसे लोकप्रिय विधा ह और हर दौर में सबसे ज्यादा पढ़ी जाती रही ह प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शैलेश मटियानी, विद्यासागर नौटियाल, संजीव, उदय प्रकाश तक कथाकारों की कई पीढ़ियां यहां हो चुकी हैं। कहानी एक ऐसी साहित्यिक विधा ह जिसे मीडिया भी महत्व देता ह

कविता : साहित्य की किसी एक विधा ने अगर पत्रकारिता को सर्वाधिक प्रभावित किया ह तो वह कविता ह कविता अपने मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम ह दुनिया की हर भाषा में अभिव्यक्ति का पहला माध्यम कविता ही ह गद्य बाद की खोज ह कई बार कविता वैयक्तिक और जटिल भी हो जाती ह लेकिन अच्छी और सार्थक कविता हमेशा अपने समय से संवाद करती ह रवींद्रनाथ ठाकुर ने कविता में आधुनिक नजरिये की जो शुरुआत की, वह हिंदी में भी लगातार जारी रही। आधुनिक हिंदी कविता की शुरुआत निराला से होती ह जो अज्ञेय, मुक्तिबोध, नागार्जुन और शमशेर में अपनी पूर्णता को प्राप्त करती ह कथ्य की नई जमीन की दृष्टि से देखें, तो समकालीन हिंदी कविता भी काफी समृद्ध ह

संस्मरण : संस्मरण का अर्थ संपूर्ण स्मृति। एक साथ जीने और बीतने में मिला भाव संस्मरण लिखने की भावभूमि होता ह संस्मरण में रचनाकार खुद को भी प्रकाशित करता चलता ह आम तौर पर व्यक्ति या तो अपने मित्रों, परिचितों पर संस्मरण लिखता ह या फिर ऐसे सम्मानित व्यक्तियों पर, जिनका सहयोग लेखक के अपने व्यक्तित्व को भी संवारता ह इसलिए वे उसकी स्मृति का एक अभिन्न हिस्सा बन जाते हैं। उपेंद्रनाथ अश्क ने मंटो मेरा दुश्मन जैसी एक कालजयी किताब लिखी ह जिसमें संस्मरणों के जरिये मंटो को बेहतर जाना जा सकता ह हिंदी में संस्मरण लिखने वालों की एक लंबी सूची ह लेकिन इसे हिंदी की केंद्रीय विधा बनाने में महादेवी वर्मा, कान्तिकुमारजैन और

काशीनाथ सिंह जसी का योगदान औरों से ज्यादा ह स्मृति की रेखाएं', 'अतीत के चलचित्र' और 'पथ के साथी' महादेवी वर्मा की चर्चित संस्मरण पुस्तकें हैं। महादेवी जी के संस्मरणों में करुणा, संवेदना और लयात्मकता के साथ गहरे सामाजिक सरोकार भी हैं। अब तो बात फली गई और बकुठपुर में बचपन उनकी चर्चित किताबें हैं। रोचकता और तुर्शी उनके संस्मरणों की विशिष्टताएं हैं। काशीनाथ सिंह ने लेखन के नए ढंग, बेबाक अंदाज और दुस्साहसी भाषा से संस्मरणों का एक नया क्षितिज खोला। काशी का अस्सी और रेहन पर रग्घू में उन्होंने बनारस और अस्सी को नितांत आत्मीय और बेलौस अंदाज में पेश किया ह

डायरी : डायरी एक तरल विधा ह यह बहुत व्यक्तिगत होती ह लेकिन निरंतरता का प्रवाह ही उसे रोचक और महत्वपूर्ण बनाता ह डायरी में चूंकि निजता होती ह, इसलिए उसकी भाषा अंतर्मुखी होती ह डायरी मूलतः पश्चिम की विधा ह विलियम वड्सवर्थ की बहन डोरोथी वड्सवर्थ, वर्जीनिया वुल्फ, एन फ्रेंक (द डायरी ऑफ ए यंग गर्ल), दोस्तोवस्की, फ्रांज काफ्का ने डायरी विधा को नई पहचान दी। बल्कि काफ्का की डायरियों के छपने के बाद साहित्य में इस विधा को व्यापक स्वीकृति मिली। हिंदी में अज्ञेय के अलावा शमशेर और मलयज की डायरियां काफी प्रसिद्ध हुई हैं। मुक्तिबोध ने एक साहित्यिक की डायरी जसी किताब लिखी। अनीता राकेश ने अपने पति मोहन राकेश पर चंद सतरें जसी डायरी लिखी। जाबिर हुसन ने डायरी विधा में अभिनव प्रयोग किया ह, जो अपनी प्रस्तुति, शसी और शिल्प में नवीन ह हाल के वर्षों में डॉ. नरेंद्र मोहन की साथ-साथ मेरा साया, पुष्पराज की नंदीग्राम डायरी, सुधीर विद्यार्थी की लौटना कठिन ह और दामोदर दत्त दीक्षित की अटलांटिक-प्रशांत के बीच जसी कुछ डायरियां आई हैं।

6.5.1 सांस्कृतिक पत्रकारिता के रूप :

मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला, नाटक और फिल्में भी सांस्कृतिक पत्रकारिता के रूप हैं। ये सभी कला रूप हमारे समाज को प्रभावित करते हैं। ये हमारी सांस्कृतिक विरासत हैं और इनका स्वरूप समय के अनुसार बदलता जाता ह मूर्तिकला या चित्रकला का जो स्वरूप कुछ दशक पहले तक था, वह आज नहीं ह नाटकों में पारसी रंगमंच के वर्चस्व के पुराने दौर से आज हम बहुत आगे निकल गए हैं। जो संगीत कला कभी राजघरानों के संरक्षण का मोहताज थी, वह आज व्यावसायिक दोहन के चरम पर पहुंच गया ह कभी बेहतरीन गायक चर्चा और संरक्षण के अभाव में खो जाते थे,

आज स्थानीय स्तर की गायन प्रतिभाएं चर्चा और प्रसिद्धि पा जाती हैं। इसी तरह फिल्में लगातार बदलाव के दौर से गुजरती रही हैं।

6.6 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता

समसामयिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को बहुत प्रभावित करती ह हिंदी पत्रकारिता का इतिहास उठाकर देखें, हर युग की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता ने समसामयिक परिदृश्य को प्रभावित किया ह उदाहरण के लिए, भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता ने सामाजिक मजबूती और स्त्री सशक्तीरण के पक्ष में माहौल बनाया, तो गणेश शंकर विद्यार्थी के दौर की पत्रकारिता ने जनमत को क्रांति का समर्थक बनाया, तो प्रेमचंद की पत्रकारिता ने लोगों में देशभक्ति और गुलामी के विरोध को स्वर दिया। आज चूंकि साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता के स्वर खुद मंद पड़ गए हैं, ऐसे में समाज पर उनके प्रभाव की बहुत उम्मीद नहीं की जा सकती। आज न तो सामाजिक मूल्यों की किसी को परवाह ह, न पत्रकारीय मूल्यों की। यहां तक कि पत्रकारीय तटस्थता और निरपेक्षता का आग्रह भी कम से कम होता गया ह इस दौर में बेशक मीडिया को साहित्य और संस्कृति से अपना पुराना रिश्ता बहाल करना होगा। लेकिन साहित्य की दुनिया में भी आज पहले जसी स्थिति नहीं ह पहले साहित्य समाज के आग-आगे चलने वाली मशाल था, आज साहित्य में बदलाव के स्वर कम ही सुनाई पड़ते हैं। प्रगतिशीलता की जगह जड़ता ने ले ली ह

6.7 लोकतंत्र, सामाजिक ं दोलन और मीडिया

भारत जसे लोकतांत्रिक देश में आजादी के बाद सामाजिक आंदोलन हालांकि कम ही हुए हैं। लेकिन जितने भी आंदोलन हुए, मीडिया ने उन सबको समुचित महत्व दिया। हालांकि मीडिया की यह व्यापकता पहले इतनी नहीं थी। आपातकाल के विरोध में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में खड़ा हुआ आंदोलन आजाद भारत में सबसे बड़ा जनांदोलन था। लेकिन आपातकाल में मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। टेलीविजन चनल तब नहीं आए थे। इसलिए सरकारी दमन और गिरफ्तारियों से जुड़ी खबरों की सत्यता पर यकीन करने के लिए तब बीबीसी का सहारा लेना पड़ता था। नई अर्थनीति के आने से पहले पूंजी का इतना विस्तार नहीं हुआ था और न ही मीडिया इतना

ताकतवर और सुदूरप्रसारी था। इसीलिए उस दौर के सामाजिक आंदोलन भी मीडिया में उतनी जगह नहीं बना पाए थे। उत्तराखंड में वनों की कटाई के खिलाफ पहाड़ चिपको आंदोलन ने तब मीडिया से ज्यादा जनमानस में जगह बनाई थी, तो इसकी वजह यही है। लेकिन उसी उत्तराखंड में डेढ़ दशक पहले शराब भट्ठियों के खिलाफ महिलाओं के आंदोलन ने मीडिया में अपनी सशक्त उपस्थित दर्ज की। अलबत्ता मीडिया की इस अति सक्रियता के अपने खतरे भी हैं। अन्ना आंदोलन इसका ताजा उदाहरण है। आंदोलन शुरू होते ही मीडिया खासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने इसे हाइजैक कर लिया। उसने यह देखने की भी जहमत नहीं उठाई कि अन्ना आंदोलन के अपने अंतर्विरोध कम नहीं हैं। हालांकि तब भी प्रिंट मीडिया के एक बड़े हिस्से ने अपेक्षाकृत संयम बरता और विवेक का परिचय दिया। इस दौर में मीडिया पहले की अपेक्षा कहीं ताकतवर है। उसके पास संसाधन भी है और उसकी पहुंच भी बहुत व्यापक है। लेकिन इसके साथ-साथ उसकी चुनौतियां भी बढ़ गई हैं।

******

6.8. सारांश

साहित्य और संस्कृति हिंदी पत्रकारिता की मूल आत्मा रही है। इस कारण पत्रकारिता की शुरुआत के साथ ही जहां हमारे यहां सामाजिक जागरूकता और अंगरेजों के विरोध की भावना देखी गई, वहीं स्वतंत्रता के बाद इसने मोहभंग को रेखांकित किया। चाहे वह हिंदी को राजभाषा बनाने का मामला हो या अंगरेजी का विरोध-हिंदी पत्रकारिता ने लगातार सरकारी नीतियों पर सवाल खड़े किए। उस दौरान सांस्कृतिक पत्रकारिता का भी उभार देखा गया। लेकिन धीरे-धीरे स्थिति बदलती चली गई। आज की हिंदी पत्रकारिता में न तो साहित्य का उतना दखल है और न ही संस्कृति का। बल्कि ग्लोबलाइजेशन ने हिंदी पत्रकारिता के सामने एक नई किस्म की चुनौती खड़ी कर दी है।

6.9 शब्दावली

साहित्यिक पत्रकारिता : साहित्यिक पत्रकारिता का मतलब ह साहित्यिक विधाओं की पत्रकारिता। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को इस श्रेणी में रखा जाता ह इसके अंतर्गत कविता, कहानी, उपन्यास आदि के अलावा साहित्यिक बहसया विमर्श आते हैं। हिंदी में साहित्यिक पत्रकारिता का आधार बहुत मजबूत रहा ह

सांस्कृतिक पत्रकारिता - मोटे तौर पर इसमें विविध कला रूप, जस नाटक, कविता, चित्रकला, संगीत आदि आते हैं। इन पर निबंध या समीक्षा सांस्कृतिक पत्रकारिता कहलाती ह लेकिन इसकी परिधि इन सबसे कहीं व्यापक होती ह हमारे समय के बड़े सांस्कृतिक सवाल भी सांस्कृतिक पत्रकारिता के तहत आएंगे।

ग्लोबलाइजेशन : ग्लोबलाइजेशन का शाब्दिक अर्थ ह भूमंडलीकरण। वर्ष 1991 में हमारे यहां जो नई आर्थिक नीति लागू हुई, उसने देखते ही देखते पूरे परिदृश्य को बदल दिया। ग्लोबलाइजेशन से हमारा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पूरी तरह बदल गया।

सामाजिक आंदोलन : हमारे समाज में समय-समय पर मौजूदा प्रथाओं के खिलाफ असहमतियां बनती हैं, जो आंदोलन का रूप लेता ह आजादी से पहले सती प्रथा या बाल विवाह के खिलाफ आंदोलन चलते थे। आजादी के बाद सामाजिक आंदोलन बहुत कम हुए। नई अर्थनीति ने ऐसे आंदोलनों की रही-सही संभावना भी खत्म कर दी।

6.10 बोध प्रश्न तथा उनके उत्तर

प्रश्न 1- **हिंदी के पहले समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड का लक्ष्य क्या था**?

उत्तर- उदन्त मार्तण्ड का लक्ष्य हिंदी पाठकों को जागरूक बनाना था। उसका ध्येय वाक्य था-सूर्य के प्रकाश के बिना जिस तरह अंधेरा नहीं मिटता, उसी तरह समाचार-सेवा के बिना अज्ञानी जन जानकार नहीं बन सकते।

प्रश्न 2-हिंदी पत्रकारिता में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान के बारे में बताएं।

उत्तर- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से पत्रकारिता को सांस्कृतिक अनुष्ठान में बदल दिया। उन्होंने नए-नए विषयों पर निबंध लिखवाकर ऐसे लेखकों की एक पीढ़ी तैयार की, जिसने आगे चलकर साहित्य और पत्रकारिता में अपनी जगह बनाई।

प्रश्न 3- **'रविवार' ने हिंदी पत्रकारिता को किस तरह बदला**?

उत्तर-'रविवार' ने हिंदी में पहली बार संवाददाताओं की नियुक्तियां कीं, जो घटनास्थल पर जाकर रिपोर्टिंग करते थे। 'रविवार' ने हिंदी पत्रकारिता को अंगरेजी के बराबर का महत्व दिया।

प्रश्न 4- **डायरी क्या है**?

उत्तर-डायरी मूलतः पश्चिम की विधा है। चूंकि इसमें निजता होती है, इसलिए इसकी भाषा अंतर्मुखी होती है। इसकी निरंतरता ही इसे लोकप्रिय बनाती है।

प्रश्न 5- **आज की हिंदी पत्रकारिता में साहित्य-संस्कृति की कितनी जगह है**?

उत्तर- समकालीन हिंदी पत्रकारिता में साहित्य-संस्कृति के लिए पहले जैसी जगह नहीं है। दरअसल ग्लोबलाइजेशन के बाद पत्रकारिता में इनकी गुंजाइश कम रह गई है।

6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न-1 साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रकारिता के स्वरूप के बारे में बताएं।

प्रश्न-2 1991 के बाद भारतीय समाज पर ग्लोबलाइजेशन का क्या प्रभाव पड़ा?

प्रश्न-3 'दिनमान' और 'धर्मयुग' ने पत्रकारिता को किस तरह प्रभावित किया?

प्रश्न-4 लोकतंत्र, सामाजिक आंदोलन और मीडिया पर एक टिप्पणी लिखिए।

प्रश्न-5 प्रेमचंद के 'हंस' और राजेंद्र यादव के 'हंस' में क्या अंतर है?

6.12 संदर्भ ग्रंथ

1. जोशी ज्योतिष- साहित्यिक पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. श्रीधर विजयदत्त-पहला संपादकीय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. जोशी पूरनचंद्र-परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

ईकाई-7

शिक्षा और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भारत में शिक्षा और साक्षरता की स्थिति

7.3 प्रिंट मीडिया में शिक्षा और शैक्षिक मुद्दे

7.4 शैक्षिक पत्रकारिता के रूप

7.5 शिक्षा और साक्षरता की स्थिति और मीडिया की भूमिका

7.6 साक्षरता के संदर्भ में भारतीय पत्रकारिता की चुनौतियां

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 बोध प्रश्न और उनके उत्तर

7.10 अभ्यास प्रश्न

7.11 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- विद्यार्थियों को शिक्षा और साक्षरता की मौजूदा स्थिति से परिचित कराना.\विद्यार्थियों को शिक्षा और साक्षरता के विकास में मीडिया की भूमिका को परिचित कराना.
- विद्यार्थियों को साक्षर शिक्षक पत्रकारिता की संभावनाओं से परिचित कराना
- विद्यार्थियों को हिंदी में शिक्षक पत्रकारिता का विकास और मीडिया की संभावनाओं से परिचित कराना

7.1 प्रस्तावना

मीडिया अपने सभी रूपों में समाज के लिए उत्तरदायी है लेकिन मीडिया की महत्ता और उपादेयता उसके रूपों और उसके लक्षित समूह के आधार पर तय होती है इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, जिसमें मुख्यत: रेडियो और टेलीविजन आते हैं, ऐसे लक्षित समूह तक संदेश और सूचनाएं पहुंचा सकता है जो साक्षर नहीं हैं। दृश्य और श्रव्य प्रधान माध्यम होने के कारण रेडियो और टेलीविजन माध्यम में संदेश और सूचनाएं सिर्फ दृश्य और श्रव्य तरीके से प्रसारित किए जाते हैं। लेकिन प्रिंट और इंटरनेट माध्यम के जरिए संदेशों और सूचनाओं को उन्हीं लक्षित समूहों तक पहुंचाया जा सकता है जो साक्षर हों। इन अर्थों में जब हम शिक्षा और साक्षरता के संदर्भों में मीडिया की चर्चा करते हैं तो इसका महत्व और उद्देश्य व्यापक होता है लेकिन प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और इंटरनेट तीनों ही माध्यमों की अपनी-अपनी सीमाएं हैं और निश्चित तौर पर अपना लक्षित समूह भी। इन संदर्भों में शिक्षा और साक्षरता के संदर्भ में मीडिया की भूमिका अलग-अलग हो जाती है इलेक्ट्रॉनिक माध्यम साक्षरता को बढ़ावा देने में सिर्फ सहयोगी की भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन प्रिंट और इंटरनेट माध्यम अपने अक्षर आधारित दुनिया की वजह से साक्षरता को बढावा देने में भी भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन जहां तक शिक्षा देने की बात है तो तीनों माध्यमों की भूमिका एक समान है यह तो हुआ एक पक्ष। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि भारत में तेजी से साक्षरता दर बढ़ रही है इसके साथ ही करीब चौबीस करोड़ बच्चे या युवा स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई कर रहे हैं। ये बच्चे और नौजवान शिक्षक पत्रकारिता के बड़े लक्षित समूह हो सकते हैं। भारत का शिक्षक परिदृश्य बेहद व्यापक है

भारतीय शिक्षा में जितनी विविधता ह, उतनी ही उलटबांसियां भी हैं। जाहिर ह कि यह एक चुनौतीपूर्ण मसला भी ह

7.2 भारत में शिक्षा और साक्षरता की स्थिति

भारत में साक्षरता के तमाम दावों के बावजूद 26 करोड़ 80 लाख निरक्षर लोग रहते हैं, जो लिखने, पढ़ने में बिल्कुल असमर्थ हैं जो दुनिया कुल निरक्षर जनसंख्या का करीब एक तिहाई ह हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम साक्षर किसे कहते हैं। भारत में 1911 की जनगणना के वक्त साक्षरता की जो परिभाषा दी गई, उसके मुताबिक जो एक पत्र पढ़-लिखकर उसका उत्तर दे देने की योग्यता रखता हो, उसे साक्षर कहा जा सकता ह इसी परिभाषा के आधार पर अब तक साक्षरता को आंका परखा जा रहा ह विद्यालय जाने वाली 4 लड़कियों में से सिर्फ़ 1 ही दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी कर पाती हैं। बाकी तीन बीच में ही पढाई छोड़ देती हैं। भारत में महिलायें औसतन 1.8 वर्ष की विद्यालयीन शिक्षा पातीं हैं| हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत शिक्षा पर अपने सकल घरेलू उत्पाद (डीजीपी) उत्पाद का केवल 3.3 प्रतिशत ही खर्च करता ह जबकि विकसित देश इसकी तुलना में कहीं ज्यादा 5.8 प्रतिशत खर्च करते हैं।

भारतीय संविधान के तहत शिक्षा राज्य का विषय ह यही वजह ह कि शिक्षा की हालत सुधारने के लिए केंद्र सरकार इसमें सीधे हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इसकी वजह से कई बार अपेक्षित ढंग से योजनाएं लागू नहीं हो पाती। भारतीय शिक्षा व्यवस्था की एक खामी यह भी ह कि अधिकतर राज्यों में शिक्षा के कुल बजट का 95 प्रतिशत शिक्षकों के वेतन पर ही खर्च हो जाता ह जबकि विद्यालय , अध्ययन सामग्री जैसे दूसरे जरूरी कामों के लिए बजट का महज एक फीसदी हिस्सा ही बाकी बचता ह

सरकारी स्कूलों में एक बड़ी कमी अनुशासन की ह इसके साथ ही अव्यवस्था और बदतर परिस्थितियों का भी बोलबाला ह इसकी वजह से अब भी 4 में से 1 अर्थात 25 प्रतिशत शिक्षक हमेशा कक्षा से अनुपस्थित रहते हैं। भारत में कक्षाओं की संरचना ऐसे की गई ह ताकि हर छात्र पर अध्यापक का पूरा ध्यान रहे। इसके लिए कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या 40 रखी गई ह लेकिन बिहार समेत उत्तर भारत के कई राज्यों में औसतन एक कक्षा में 83 छात्र /

छात्राएं हैं। हालांकि शिक्षा के अधिकार का कानून लागू होने के बाद देश में अध्यापकों की भर्ती में तेजी आई ह लेकिन इसके पहले तक 75 प्रतिशत विद्यालयों में कई कक्षाओं के लिए सिर्फ़ एक ही शिक्षक होता था। भारतीय शिक्षा की भयावहता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता ह कि सन् 2004 में स्कूल में भर्ती होने वाले 3 करोड़ 20 लाख बच्चों में से आधे भी 8 साल तक विद्यालय नहीं गए। इसके साथ ही भारत में बाल श्रमिकों की शिक्षा भी एक बड़ी समस्या ह एक आंकड़े के मुताबिक इन दिनों देश में 1 करोड़ 30 लाख बाल श्रमिक हैं |

वर यूनेस्को ने 1965 में ईरान की राजधानी तेहरान में निरक्षरता उन्मूलन के लिए पूरी दुनिया के शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन में तय किया गया कि साक्षरता ऐसी हो, जो मनुष्य सामाजिक, नागरिक व आर्थिक भूमिका निभाने लायक बना सके, सिर्फ पढऩा-लिखना सिखाना नहीं। इसके बाद भारत ने शिक्षा आयोग का गठन किया, जिसके अध्यक्ष (1964-66) डॉ. डी.एस. कोठारी बनाए गए। इसीलिए इसे कोठारी आयोग भी कहते हैं। इस आयोग ने यूनेस्को की तर्ज के मुताबिक आयोग ने अपनी रिपोर्ट में औपचारिक शिक्षा अवसरों के माध्यम से अपना कौशल व शिक्षा बढ़ाने पर जोर देने लायक शिक्षा पर जोर दिया। आयोग ने विज्ञान को शिक्षा व संस्कृति की बुनियाद का अहम हिस्सा बनाने की भी सिफारिश की। जिनमें से ज्यादातर सिफारिशों को मान लिया और 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति वजूद में आई। इसी के अनुरूप स्कूली पाठ्यक्रमों में लड़कों व लड़कियों के लिए साझा योजना के साथ-साथ विज्ञान व गणित को अनिवार्य विषयों में शामिल कर लिया गया।

इसके अलावा कार्यानुभव को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। वैज्ञानिक साक्षरता का प्रमुख उद्देश्य था कि बच्चों को इस काबिल बना दिया जाए कि वे स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग और रोजमर्रा की जिंदगी के अन्य पहलुओं के साथ विज्ञान के संबंध को जान सकें। 1968 की नीति को तमाम कारणों से कार्यान्वित नहीं किया जा सका। इसका नतीजा यह हुआ कि अपव्यय, जड़ता, पहुंच, गुणवत्ता व वित्त से संबंधी जिन समस्याओं का पहले जिक्र किया गया था वे धीरे-धीरे फिर बढ़ गईं। इस पर राजीव सरकार ने ध्यान दिया और 1986 में नई शिक्षा नीति शुरू की गई। पहले जहां पंजीकरण पर ही केवल जोर था, वह अब पंजीकरण के साथ-साथ छात्रों को स्कूलों में बनाए रखने पर भी हो गया।

इसके साथ ही स्कूल प्रणाली के दायरे के बाहर रहे छात्रों और निरक्षरों के लिए सामाजिक व प्रौद्योगिक मिशन के तौर पर राष्ट्रीय साक्षरता अभियान 5 मई 1988 को शुरू किया गया। जिसका उद्देश्य 1995 तक आठ करोड़ निरक्षर प्रौढों को कारगर साक्षरता प्रदान करना। फिर भी साक्षरता और शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल नहीं किया जा सका। लिहाजा 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान की शुरूआत की। इसका मसौदा अक्टूबर 1998 में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन की सिफारिश पर बनाया गया। इसके तहत केंद्र और राज्य सरकार के बीच 85 और 15 की भागीदारी के आधार पर थी, दसवीं योजना के दौरान 75 और 25 और इसके बाद 50 और 50 के आधार पर थी। इस कार्यक्रम में समूचे देश को शामिल किया गया ह जिसमें 12.3 लाख बस्तियों में 19.4 करोड़ बच्चों की जरूरतों को जोड़ा गया ह इसमें देश के सभी करीब 8.5 लाख प्राथमिक और अपर प्राथमिक स्कूल तथा करीब 33 लाख अध्यापकों को शामिल किया गया। भारत में शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के लिए 2005 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद यानी एनसीईआरटी ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम पुनश्चर्या कार्यक्रम तैयार किया। जिसके तहत पूरे देश में नौंवी से लेकर बारहवीं तक की कक्षाओं में विज्ञान, गणित, भारतीय भाषाएं, अंग्रेजी, सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई के साथ ही कला, नृत्य, थियेटर और संगीत का शिक्षा में जोर देने और अपने आसपास की परिस्थिति से सीखने पर जोर दिया गया। ये तो हुई प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की बात। भारत में उच्च शिक्षा की हालत भी बहुत बेहतर नहीं ह देशभर में करीब 455 विश्वविद्यालय हैं, जिनमें 128 डीम्ड विश्वविद्यालय हैं। छह आईआईटी समेत मेडिकल और तमाम तरह की शिक्षा देने वाले करीब 45,000 कॉलेज हैं। तकनीकी शिक्षा पर नियंत्रण के लिए जहां अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ह वहीं विश्वविद्यालयों पर लगाम लगाने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ह जो समय-समय पर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव भी करता रहता ह और वाजिब नियंत्रण भी रखता ह

मेडिकल शिक्षा पर नियंत्रण भारतीय चिकित्सा परिषद करती ह इसके अलावा आईआईएम जैसे उत्कृष्ट संस्थान भी हैं। भारत में 16 केंद्रीय विश्वविद्यालय हैं, जिन पर केंद्र सरकार का नियंत्रण ह तो राज्यों में करीब चार सौ विश्वविद्यालय हैं। इसके अलावा कई प्रदेशों में निजी विश्वविद्यालय भी हैं। सबकी अपनी समस्या हैं और अपने फायदे भी। जाहिर ह कि भारत का शैक्षिक

परिदृश्य बेहद व्यापक है। भारतीय शिक्षा में जितनी विविधता है, उतनी ही उलटबांसियां भी हैं। यह एक चुनौतीपूर्ण मसला भी है और इसके बारे में व्यापक रूप से चिंतन-मनन भी होना चाहिए।

7.3 प्रिंट मीडिया में शिक्षा और शैक्षिक मुद्दे

एक दौर था जब शिक्षा और उससे जुड़े विषयों की कवरेज को खास ध्यान नहीं दिया जाता था। लेकिन आज शायद ही कोई अखबार और पत्रिका हो, जो शिक्षा, उससे जुड़ी गतिविधियां और उनसे जुड़े मुद्दों की कवरेज नहीं करता हो। वस्तुत: यह ध्यान रखना चाहिए कि शैक्षिक गतिविधियों और शिक्षा से जुड़े मसलों की कवरेज के जरिए मीडिया जहां अपने युवा और युवतर पाठकों को शिक्षित करता है, उसे सूचनाओं से लैस करता है और इन सूचनाओं के जरिए उसे भविष्य की चुनौतीपूर्ण भूमिका के लिए तैयार करता है। इसके साथ ही वह भविष्य के पाठक भी तैयार करता है। इस संदर्भ में प्रख्यात पत्रकार हरिशंकर द्विवेदी का एक संस्मरण याद आता है। एक दौर के हिंदी के प्रतिष्ठित अखबार रहे विश्वमित्र के दिल्ली संस्करण के संपादन का जब उन्हें दायित्व सौंपा गया, तब दिल्ली में इस अखबार की कोई खास-पूछ परख नहीं थी। उन्होंने पाया कि दिल्ली का विश्वमित्र छात्रों के लिए खास सूचनाएं नहीं देता। जबकि सत्तर के दशक में दिल्ली शिक्षा का गढ़ बनती जा रही थी। उन्होंने छात्रों के लिए जरूरी सूचनाएं देनी शुरू की और फिर देखते ही देखते दिल्ली में भी विश्वमित्र के पाठक बढ़ गए।

मीडिया में शिक्षा की कवरेज के मूलत: दो रूप हैं। एक सिर्फ शैक्षिक विषयों और गतिविधियों की सूचनाएं देना और इसके जरिए नौजवान वर्ग को भविष्य के लिए तैयार करना। दूसरा रूप है शैक्षिक संस्थानों की सूचनाएं, गतिविधियां और वहां चल रही उठा-पटक और अच्छी-बुरी हलचलों की खबरें देना। हिंदी का शायद ही कोई अखबार हो, जहां अब शिक्षा बीट पर काम करने वाले पत्रकार अलग से नहीं रखे जाते। मीडिया में शिक्षा का सही मायने में यह पहला रूप है। जबकि दूसरे रूप में मीडिया तैयारियों, प्रतियोगिता परीक्षाओं, विश्वविद्यालयों और बोर्ड की परीक्षाओं की तैयारियों, मानसिक चुनौतियों, नौकरियों की सूचनाएं, उसके लिए तैयारी कराने वाले संस्थानों की सूचनाएं और विश्लेषण देता है। दैनिक हिंदुस्तान का सप्लिमेंट नई दिशाएं, अमर उजाला का उड़ान, दैनिक जागरण का जोश आदि ऐसे ही सप्लिमेंट हैं।

वहीं दैनिक ट्रिब्यून जैसी अखबार हर बुधवार को अलग से शिक्षालोक नाम से पृष्ठ ही प्रकाशित करता है। इन सप्लिमेंट और पृष्ठों में युवाओं के लिए जरूरी शैक्षिक और प्रतियोगितात्मक सूचनाएं दी जाती हैं। इसके अलावा अब तो प्रतियोगिता की तैयारी और उससे जुड़े ज्ञान के लिए अलग से पत्रिकाओं की बाढ़ ही बाजार में आ गई है। इस श्रेणी में आगरा से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका प्रतियोगिता दर्पण सिरमौर बनी हुई है। उसी प्रकाशन का सामान्य ज्ञान दर्पण भी इसी श्रेणी की पत्रिका है। प्रतियोगिता किरण, सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल, दैनिक भास्कर समूह का लक्ष्य, अमर उजाला समूह की सफलता और आउटलुक समूह का करियर 360 डिग्री जैसी पत्रिकाएं इसी श्रेणी की दूसरी पत्रिकाएं हैं। चूंकि इनमें करियर से जुड़ी तैयारियों और सूचनाओं की भरमार के साथ ही जरूरी सलाह और दिशा-निर्देशन होता है, इसलिए इन्हें कॅरियर पत्रिकाएं भी कहा जाता है।

7.4 शैक्षिक पत्रकारिता के रूप

मीडिया में दो तरह से शैक्षिक गतिविधियों और करियर को कवर किया जाता है। एक तो दैनिक या साप्ताहिक आधार पर शैक्षिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों, शिक्षा विभाग, शिक्षा बोर्ड की रिपोर्टिंग करता है। इसकी जिम्मेदारी आमतौर पर सिटी रिपोर्टिंग टीम के किसी सदस्य के हाथ होती है। दिल्ली जैसे शहरों में चूंकि कई विश्वविद्यालय, दूसरे शैक्षिक संस्थान और विभाग हैं। लिहाजा शैक्षिक बीट पर कई रिपोर्टर होते हैं और उनकी जिम्मेदारियां बंटी होती है। लेकिन राज्य सरकार के शिक्षा मंत्रालय या इससे जुड़े मंत्रालयों की गतिविधियों और उनमें शैक्षिक मुद्दों पर हो रही राजनीति, उठापटक और नीतिगत फैसलों की रिपोर्टिंग वरिष्ठ स्तर के संवाददाता करते हैं। इसी तरह केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय, जिसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय कहा जाता है, उसकी गतिविधियों, उठापटक, राजनीतिक फैसलों, नीतिगत बदलावों आदि की रिपोर्टिंग की जिम्मेदारी राजनीतिक ब्यूरो के वरिष्ठ संवाददाता या विशेष संवाददाता या प्रमुख संवाददाता के पास होती है। इन सब श्रोतों से मिली खबरें अपनी महत्ता के मुताबिक पहले से लेकर अंदर के किसी पृष्ठ पर जगह हासिल कर लेती हैं। लेकिन अव्वल तो ऐसी खबरों के लिए अलग से अखबारों में कोई डेस्क नहीं होता। लेकिन कॅरियर सप्लिमेंट के लिए सामग्री चयन और की जिम्मेदारी अलग से फीचर विभाग के ऐसे उपसंपादक को दी जाती है, जिसकी अभिरूचि तैयारी और करियर से जुड़े मुद्दे और सूचनाओं के प्रकाशन में हो।

कॅरियर पत्रिकाओं में तो रिपोर्टिंग बहुत कम और डेस्क का काम ज्यादा होता है, इसलिए वहां तकरीबन हर पत्रकार को जरूरत पड़ने पर रिपोर्टिंग और डेस्क – दोनों का काम करना पड़ता है। आमतौर पर कॅरियर सप्लिमेंट या पत्रिकाओं के लिए हिंदी में अब भी ज्यादातर सामग्री फ्रीलांसर ही मुहय्या कराते हैं। इस काम के लिए उन्हें ज्यादा तरजीह दी जाती है, जिन्होंने कभी राष्ट्रीय और प्रदेश स्तरीय प्रतियोगिता परीक्षा में हिस्सा लिया हो। कभी-कभी किसी विशेषज्ञ से भी प्रतियोगी परीक्षाओं की तय्यारी को लेकर विशेष आलेख लिखवा लिए जाते हैं।

7.5 शिक्षा और साक्षरता की स्थिति और मीडिया की भूमिका

शिक्षा, साक्षरता और मीडिया का एक दूसरे के साथ अन्योन्याश्रय का संबंध है। शिक्षा हासिल करने की दिशा में साक्षरता हासिल करना एक महत्वपूर्ण पड़ाव होती है। यह जरूरी नहीं कि हर साक्षर व्यक्ति शिक्षित ही हो। लेकिन आम धारणा यही है कि साक्षर व्यक्ति शिक्षित जरूर होता है। लेकिन अगर व्यक्ति साक्षर नहीं है तो यह साफ है कि प्रिंट और इंटरनेट माध्यम सूचनाएं देने, मनोरंजन करने और शिक्षा देने जैसी अपनी तीनों भूमिकाओं का सफल निर्वाह नहीं कर सकता। जाहिर है कि बिना शिक्षित और साक्षर समुदाय के मीडिया के इन दोनों माध्यमों का काम नहीं चल सकता। यानी प्रिंट और इंटरनेट माध्यम के लिए शिक्षित और साक्षर लक्षित समूह जरूरी है। अक्षर ज्ञान की कमी वाले व्यक्ति तक मीडिया के इन दोनों माध्यमों की पहुंच और संदेशों की सफलता की गारंटी नहीं दी जाती।

मीडिया का आमतौर पर लक्षित समूह के लिए तीन काम माना जाता है- *सूचना देना, मनोरंजन करना और शिक्षित करना*। सूचनाएं देकर और शिक्षित करके मीडिया जनमत के निर्माण में भी भूमिका निभाता है। लेकिन मीडिया की पूंजीगत संरचना में आ रहे बदलाव, तकनीक के दबाव और सामाजिक-राजनीतिक कारणों के चलते अब मीडिया पर पूर्वाग्रही होने के भी आरोप लगने लगे हैं। बदलते दौर में नई आर्थिकी राजनीति पर असर डाल रही है। ऐसे में यह मानना कि इसका असर मीडिया पर नहीं पड़ेगा, नासमझी ही कही जाएगी। शायद यही वजह है कि इन दिनों मीडिया साक्षरता की भी नई अवधारणा ने जन्म लिया है। इसका मतलब यह है कि लक्षित समूह की मीडिया

साक्षरता और समझ भी बेहतर होनी चाहिए। तभी जाकर वह मीडिया के जरिए हो रही राजनीति, समाजनीति और संदेशों को सही परिप्रेक्ष्य में ग्रहण कर पाएगा। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि अब मीडिया की भूमिका अपने संदेशों के जरिए लक्षित समूह को शिक्षित करना, मनोरंजन करना और सूचनाएं देना भर नहीं रह गया ह बल्कि मीडिया के जरिए दिए जा रहे संदेशों को सही संदर्भ में ग्रहण करना भी हो गया ह

आज के इस बदलते दौर में हम सभी 'नॉलेज सोसायटी' का हिस्सा हैं, जिसमें ज्ञान के एक बड़े हिस्से को समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी मीडिया के कंधे पर ह लोकतंत्र के महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में भी मीडिया से इस तरह के योगदान की अपेक्षा पहले भी थी और आज भी ह हालांकि हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि किसी नतिक आधार का निर्माण सिर्फ मौजूदा समाज और नीतियां नहीं कर सकतीं। यूनेस्को की एक रिपोर्ट "The World Ahead : Our Future in the Making", में यह साफ रेखांकित किया गया ह कि किसी भी नतिक समाज का निर्माण बाजार नहीं कर सकता। इन संदर्भों में भी मीडिया की भूमिका को देखा-परखा जाना जरूरी ह लेकिन भारत में यह चुनौती कहीं ज्यादा ह इसकी वजह ह यहां की साक्षरता दर।

2001 की जनगणना के मुताबिक करीब 65 फीसदी आबादी ही शिक्षित थी। लेकिन 2011 की जनगणना के मुताबिक करीब 74 फीसदी जनसंख्या साक्षर हो चुकी ह इस आंकड़े के मुताबिक करीब 82 फीसदी पुरूष इन दिनों साक्षर हैं, जबकि 65 फीसदी महिलाओं को ही अक्षर ज्ञान ह इन आंकड़ों के आधार पर ही देखें तो अभी इस देश में सकल साक्षरता की दर हासिल करने के लिए कम से कम 16 फीसदी का आंकड़ा और हासिल किया जाना ह संयुक्त राष्ट्र संघ के मानकों के मुताबिक शत-प्रतिशत साक्षरता का मानक देश की करीब 90 फीसदी आबादी का साक्षर होना ह 2011 की जनगणना के ही मुताबिक करीब भारत की जनसंख्या 121 करोड़ ह इस आधार पर देखें तो मौजूदा आंकड़ों के ही मुताबिक करीब 89 करोड़ 54 लाख लोग ही साक्षर हैं। यानी शत-प्रतिशत साक्षरता दर हासिल करने के लिए अभी 19 करोड़ 36 लाख लोगों को साक्षर बनाया जाना ह भारत जसे देश में जहां अभी-भी जनसंख्या की विकास दर 12.81 फीसदी सालाना ह जाहिर ह कि भारत को इस मोर्चे पर काफी काम करना ह निश्चित तौर पर इसमें तमाम भाषाई समूह हैं। लिहाजा मीडिया की चुनौती भी उतनी ही बढ़ जाती ह

जिन विकसित देशों में साक्षरता की शत-प्रतिशत कामयाबी हासिल कर ली गई ह, वहां मीडिया पारंपरिक भूमिका में ही ह, यानी सिर्फ सूचनाएं देना और मनोरंजन करना। इसके जरिए जाने-अनजाने वह शिक्षित भी कर रहा ह, लेकिन भारत में मीडिया की एक बड़ी चुनौती साक्षरता विकास दर को भी हासिल करना ह, यानी यहां खासतौर पर प्रिंट और इंटरनेट मीडिया को अपने लिए नया पाठक वर्ग भी तय्यार करना ह, भारत में नब्बे के दशक में सब राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना हुई और भारत में साक्षरता दर हासलि करने की दिशा में तेज काम होने लगा तो इसमें प्रिंट मीडिया की भी सहायता ली गई। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के राष्ट्रीय महानिदेशक रहे सुदीप बनर्जी ने मीडिया के जरिए साक्षरता के लिए नया अभियान चलाया। तब खासतौर पर भाषाई और क्षेत्रीय मीडिया में नवसाक्षरों के लिए सामग्री प्रकाशित करने पर जोर दिया गया। पारंपरिक मीडिया के माध्यमों मसलन लोककलाओं, नाट्यकला आदि के जरिए भी लोगों को इस तरफ जोड़ने की कोशिश की गई। देश में नए-नए विकसित हो रहे टेलीविजन के जरिए भी साक्षरता के प्रति सम्मोहित करने वाले संदेश प्रसारित किए गए। रेडियो के जरिए भी गांव की पगडंडियों, खेत-खलिहानों से लेकर कारखानों और झुग्गियों के बीच तक साक्षरता की अलख जगाने की कोशिश की गई।

'चलो पढ़े-लिखें, कुछ कर दिखाएं' उस दौर के मशहूर नारे रहे। जिनका श्रव्य और दृश्य माध्यमों ने खूब इस्तेमाल किया और उन लक्षित समूहों को आकर्षित किया, जिन्हें अक्षर ज्ञान नहीं था। फिर इन नवसाक्षरों को अक्षर विश्व से परिचित कराने, उसमें दिलचस्पी बनाए रखने और उसे आगे बढ़ाने में भाषाई और क्षेत्रीय मीडिया ने सफल भूमिका निभाई। अगर भारत की आज की 74 फीसदी की साक्षरता दर भले ही कम लगती हो, लेकिन अगर आजादी के बाद के आंकड़ों से इसकी तुलना करते हैं तो ये आंकड़े कामयाबी की लंबी कहानी को बयान करते हैं। आजादी के बाद भारत की साक्षरता दर महज 12 फीसदी थी। जाहिर ह, कि इसमें मीडिया की एक बड़ी भूमिका रही ह,

7.6 साक्षरता के संदर्भ में भारतीय पत्रकारिता की चुनौतियां

मीडिया जब साक्षरता में बढ़ोत्तरी करने में भूमिका निभाता ह, तो वह सिर्फ देश या समाज का ही भला नहीं कर रहा होता ह, बल्कि वह अपने लिए नए शिक्षित और साक्षर लक्षित समूह भी

तय्यार कर रहा होता ह इन लक्षित समूहों के जरिए वह दरअसल अपने लिए नया पाठक, श्रोता और दर्शक भी जोड़ता ह फिर 1 अप्रल 2010 से शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में जोडा जा चुका ह सन 2010 के एक अनुमान के मुताबिक भारत में करीब 22 करोड़ बच्चे और किशोर स्कूली शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, जबकि करीब डेढ़ से पौने दो करोड़ उच्च शिक्षा की पढ़ाई कर रहे हैं। लेकिन शिक्षा का अधिकार लागू होने के बाद जाहिर ह कि इस संख्या में और इजाफा होना ह यानी एक विशाल पाठक वर्ग भारतीय मीडिया के लिए संभावनाओं का नया दरवाजा खोलने वाला ह इसके साथ ही श्रोताओं और दर्शकों का भी एक बड़ा लक्षित समूह तय्यार होने वाला ह जाहिर ह कि इनकी भी मानसिक भूख होगी, जो वे आंखों और कान के जरिए पूरा करना चाहेंगे। इसकी तस्दीक दुनिया की एक बड़ी सर्वे और शोध एजेंसी प्राइसवाटर हाउस कूपर की रिपोर्ट भी करती ह 2009 में आई इस रिपोर्ट के मुताबिक 2008 में भारत में प्रिंट मीडिया उद्योग करीब 140.7 बिलियन डॉलर का था। यह बढ़त पिछले साल के मुकाबले करीब सात फीसदी ज्यादा थी। इस तरह 2009 में बढ़कर यह उद्योग 146.4 बिलियन डॉलर हो गया। यानी पिछले साल की तुलना में करीब चार फीसद की बढ़त दर्ज की गई। कूपर ने जब ये रिपोर्ट जारी की थी, तब आर्थिक मंदी शुरू नहीं हुई थी। इसी तरह कूपर ने 2010 में यहां के प्रिंट माध्यम का बिजनेस करीब 154.8 बिलियन डॉलर तक पहुंच जाने का अनुमान लगाया था। यानी पांच दशमलव आठ फीसदी की बढ़त होनी ह

इसी तरह 2011 में इस उद्योग के 166.5 बिलियन डॉलर तक पहुंचने अनुमान था। यानी साढ़े सात फीसदी की बढ़ोत्तरी। जो लगभग ऐसा ही रहा। इसी तरह 2012 में सात फीसद की बढ़त के साथ 178.1 बिलियन डॉलर तक पहुंचने का अनुमान था। इस एजेंसी के मुताबिक 2013 में भारतीय समाचार पत्र उद्योग का कारोबार 184.8 बिलियन डॉलर तक पहुंचने का अनुमान लगाया ह यानी करीब तीन दशमलव सात फीसदी की बढ़त। 2008 से 2013 के बीच की ये बढ़त प्राइसवाटर हाउस कूपर के मुताबिक करीब पांच दशमलव छह फीसदी बढ़ती ह यह तो सिर्फ प्रिंट माध्यमों को लेकर प्राइसवाटर हाउस कूपर का अनुमान ह इसी अंदाज में दृश्य यानी टेलीविजन और श्रव्य यानी रेडियो का भी विकास होना ह

इन आंकड़ों से जाहिर ह कि मीडिया की कोशिशें कम से कम भारत जैसे देश में उसके लिए ही बड़े लक्षित समूह के तौर पर फायदेमंद होती जा रही ह यानी इतने बड़े पाठक, श्रोता और दर्शक

समूह के लिए सूचनाओं और मनोरंजन की जरूरत होगी। जिसे अपने विभिन्न माध्यमों के जरिए मीडिया को ही पूरा करना होगा। फिर इतने बड़े समूह में शिक्षा हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ रहा समूह भी होगा। जाहिर है कि उसकी भी जरूरतें पूरा किया जाना जरूरी होगा।

भारत में अंगरेजी मीडिया इस जरूरत को ध्यान में रखकर स्कूली बच्चों को ही अखबार से जोड़ने की कोशिश कर रहा है। हिंदुस्तान टाइम्स का 'एचटी नेक्स्ट' और टाइम्स ऑफ इंडिया का 'स्कूल टाइम्स' ऐसी ही कोशिशें हैं। द हिंदू समूह अभी तक यंग वर्ल्ड सप्लीमेंट के ही जरिए नए पाठकों को जोड़ रहा है। मलयाला मनोरमा समूह का मंजिक वर्ल्ड भी स्कूली छात्रों की जरूरतों को पूरा करने की कोशिशों का ही नतीजा है। हालांकि हिंदी समेत भाषाई मीडिया में अभी तक सिर्फ कहानी-कविता से ही नए पाठकों को ज़ोड़ने की कोशिश जारी है, लेकिन उनकी भी जरूरतों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना ही होगा। मनोरंजन मीडिया में कार्टून नेटवर्क, हंगामा टीवी जैसे चैनल हैं, जो खास बच्चों के लिए हैं। इस दौर में प्रतियोगिता पत्रिकाओं की बाढ़ और अखबारी सप्लिमेंट में उनकी कमी पूरी करने की कोशिशें भी तेज हो गई हैं। जाहिर है कि नए और युवा होते पाठकों को जोड़ने की कोशिशें और उनकी मानसिक और सामाजिक जरूरतों के मुताबिक सूचनाएं मुहैया कराने का दौर जारी है। टेलीविजन चैनल और एफएम रेडियो भी अब प्रतियोगिताओं की तैयारी और सूचनाओं की जानकारी देने वाले कार्यक्रम बनाने और प्रसारित कर रहे हैं। लेकिन अभी इस मोर्चे पर बहुत कुछ किया जाना बाकी है। जाहिर है कि इतने बड़े कारोबार में प्रशिक्षित पत्रकारों की जरूरत होगी। वैसे भारत में पिछले कुछ सालों से आई 'सूचना क्रांति' के दौर में मीडिया ने ज्ञान की सभी परंपराओं को पछाड़ते हुए समाज की शिक्षा को नई दिशा दी है।

समाचार, दृश्य और विश्लेषण की त्रि-आयामी जकड़ ने आज आदमी को देश और दुनिया की गतिविधियों को जानने के लिए प्रेरित किया है। फिर बेशुमार पत्रों की आवक भी बढी है। जिसके चलते मीडिया में फैशन, ब्यूटी, अपराध, हत्याओं की खबरें बढ़ती गई हैं। जिसका असर नई पीढ़ी पर दिखाई पड़ रहा है। इसे लेकर दुनिया में शोध और अध्ययन जारी हो रहे हैं। इसी के चलते विचारक और नीति निर्देशक मीडिया साक्षरता को पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग मानने लगे हैं। उनका मानना है कि छात्रों को शुरू से ही यह पता होना चाहिए कि समाज और संस्कृति की चेतना में मीडिया की क्या भूमिका है। भारत के लिए भले ही यह नई अवधारणा हो, लेकिन दुनिया के कई

हिस्सों, खासकर विकसित राष्ट्रों में कई साल से इसको लेकर चिंतन और अध्ययन हो रहे हैं। भारत में इसे लेकर एनसीईआरटी ने भी अध्ययन शुरू किया ह

******

7.7 सारांश

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मीडिया का शिक्षा और साक्षरता के साथ सहजीवी रिश्ता ह मीडिया एक ऐसे समाज में जहां साक्षरता दर कम ह, वहां साक्षरता और शिक्षा की दर को बढ़ावा देने में सक्रिय और कामयाब भूमिका निभाता ह तो दूसरी तरफ वह ऐसा करके अपने लिए नया लक्षित समूह भी तय्यार करता ह जिसमें पाठक, श्रोता और दर्शक तीनों होते हैं। साक्षरता को बढ़ावा देने में अपने खास चरित्र और बुनावट के जरिए प्रिंट माध्यम ही सक्रिय और सीधी भूमिका निभा सकता ह अपनी खास बुनावट और प्रभावी भूमिका के कारण रेडियो और टेलीविजन साक्षरता को बढ़ावा देने में सिर्फ सहयोगी भूमिका ही निभा सकते हैं। लेकिन तीनों का समन्वित प्रयास ऐसे लक्षित समूह का निर्माण करता ह, जो शिक्षित और जागरूक हो। शिक्षा और जागरूकता का असर समाज, राजनीति और अर्थनीति को लेकर जनमत बनाने में भी अहम भूमिका निभा सकता ह तीनों का समन्वित प्रयास मीडिया साक्षर लक्षित समूह को भी तय्यार करता ह जो सामान्य लक्षित समूह की तुलना में कहीं अधिक सक्रिय, जागरूक और प्रभावी होता ह भारत में अभी शत-प्रतिशत साक्षरता दर को हासिल किया जाना बाकी ह लिहाजा यहां के मीडिया को कई स्तरों पर काम करना ह एक तरफ उसे साक्षरता के विकास की गति को तेज करने में भूमिका निभानी ह तो दूसरी तरफ साक्षर और शिक्षित हो रहे या हो चुके लक्षित समूह की मानसिक भूख को पूरा करने की तय्यारी भी करनी ह जाहिर ह कि भारतीय-खासकर भाषाई मीडिया के सामने बड़ी चुनौती ह क्योंकि शत-प्रतिशत साक्षरता दर भाषाई समूहों में स्थानीय भाषाओं के जरिए ही हासिल होनी ह

7.8 शब्दावली

साक्षरता - सामान्य अक्षर ज्ञान हासिल करना, लिखना-पढ़ना सीखना।

मीडिया साक्षरता – मीडिया के हर माध्यम की अपनी सीमाएं और बुनावट होती ह लिहाजा उनके जरिए दिए जाने वाले संदेश भी अलग-अलग स्तरों पर दिए जाते हैं। इन संदेशों को समझने के लिए बुनियादी समझ को मीडिया साक्षरता कहा जाता ह

शैक्षिक पत्रकारिता – शिक्षा और साक्षरता से जुड़े मुद्दों की पत्रकारिता को शक्षिक पत्रकारिता कहा जाता ह

कॅरियर पत्रकारिता – पत्रकारिता का वह क्षेत्र, जिसमें कॅरियर की तयारी आदि से जुड़ी सूचनाएं और विश्लेषण को पेश किया जाता ह

कैंपस रिपोर्टिंग - विश्वविद्यालयों और शक्षिक संस्थानों के अंदर छात्रों और अध्यापकों से जुड़ी घटनाओं और विषयों की रिपोर्टिंग को कैंपस रिपोर्टिंग कहा जाता ह

7.9 बोध प्रशन और उनके उत्तर

प्रश्न- भारत में साक्षरता दर कितनी है?

उत्तर – 2011 की जनगणना के मुताबिक भारत की साक्षरता दर 74 फीसदी ह इसके मुताबिक भारत के 82 फीसदी पुरूष साक्षर हैं, जबकि सिर्फ 65 फीसदी महिलाएं ही साक्षर हैं। आजादी के वक्त भारत की साक्षरता दर महज 12 फीसदी ही थी।

प्रश्न – मीडिया साक्षरता को बढ़ावा कैसे देता है?

उत्तर- भारत जसे देश में प्रिंट माध्यम नवसाक्षरों के लिए अक्षर ज्ञान की सामग्री प्रकाशित करके जहां साक्षरता को बढ़ाने की बुनियाद रखते हैं, वहीं अपनी प्रभावी भूमिका और दर्शकों-श्रोताओं के दिल

तक सीधी पहुंच रखने की ताकत के चलते रेडियो और टेलीविजन इसके लिए माहौल तय्यार करते हैं।

प्रश्न- भारत में शैक्षिक पत्रकारिता की कैसी संभावना है?

उत्तर- भारत में शिक्षा का अधिकार को मौलिक अधिकार में शामिल कर लिया गया ह इससे हर बच्चे को पढ़ने का मौलिक हक मिल गया ह जाहिर ह कि इसके असर से नए पाठक, दर्शक और श्रोताओं की संख्या में खासी बढ़ोत्तरी होने वाली ह फिर 2010 के एक अनुमान के मुताबिक भारत में स्कूलों में करीब 22 करोड़ बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इसके अलावा करीब पौने दो करोड़ युवा उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। साफ ह कि इनकी भी अपनी मानसिक भूख ह, जरूरतें हैं और उन्हें पूरा करने का दायित्व मीडिया पर ही ह यही वजह ह कि मीडिया का चाहे जस भी माध्यम हों, सबके लिए शैक्षिक मुद्दों और जरूरतों के मुताबिक काम करने वालों की जरूरत बनी हुई ह इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी ह इस लिहाज से भारत में शैक्षिक पत्रकारिता के लिए संभावनाओं का अपार संसार खुला पड़ा ह

7.10 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 भारत में शत-प्रतिशत साक्षरता हासिल करने के लिए मीडिया की चुनौतियों पर प्रकाश डालिए.

प्रश्न-2 भारत में मीडिया किस तरह साक्षरता और शिक्षा के मोर्चे पर अहम भूमिका निभा सकता ह

प्रश्न-3 भारतीय साक्षरता और शिक्षा की मौजूदा स्थिति में मीडिया किस तरह बदलाव ला सकता ह, सोदाहरण विवेचन कीजिए।

प्रश्न-4 कॅरियर पत्रकारिता और कैंपस रिपोर्टिंग में मूलभूत क्या अंतर ह? दोनों के बीच की समानताओं का जिक्र करते हुए दोनों पर प्रकाश डालिए।

7.11 संदर्भ ग्रंथ

1. राज समाज और शिक्षा- कृष्ण कुमार

2. हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम- वेद प्रताप वदिक

3. शिक्षा और विकास के सामाजिक आयाम- मूनिस रज़ा

4. उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र- पॉओलो फ्रेरे

5. आदिवासी समाज और शिक्षा- रामशरण जोशी

6. शिक्षा, संस्कृति और लोकतंत्र – नरिंदर सिंह

7. ग्रहणशील मन- मारिया मांटेसरी

8. बच्चे असफल क्यों होते हैं- जॉन होल्ट

ईकाई-8

रोज□ार और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 भारत में रोजगार का परिदृश्य

- 8.2.1 रोजगार की पृष्ठभूमि
- 8.2.2 आजादी के बाद रोजगार की स्थिति
- 8.2.3 आर्थिक सुधारों के बाद का ट्रेंड

8.3 मीडिया में रोजगार की रिपोर्टिंग

- 8.3.1 खबरों में रोजगार के कवरेज
- 8.3.2 विशेष अखबारों व परिशिष्टों का प्रकाशन

8.4 रोजगार से संबंधित पत्रकार

- 8.4.1 उप-संपादक
- 8.4.2 रिपोर्टर
- 8.4.3 फीचर लेखक

8.5 सारांश

8.6 अभ्यास प्रश्न

8.7 संदर्भ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्य हैं-

-भारत में रोजगार के परिदृश्य का आकलन करना।

-आजादी के बाद देश में रोजगार की स्थिति क्या बनी।

-मीडिया में रोजगार को लेकर कैसी स्थितियां तैयार हुईं।

8.1 प्रस्तावना

मीडिया का समाज से रिश्ता बहुत पुराना है, बल्कि आदिम युग से है। आखिरकार सभ्यता के विकास के शुरुआती दौर में, जब वर्णों की कोई सुव्यवस्थित रूपरेखा नहीं थी, लेखन के लिए प्रयुक्त जरूरी सामग्रियों का ईजाद नहीं हुआ था, तब भी एक-दूसरे से संवाद व संचार के लिए मानव समाज ने कुछ संकेतक गढ़े ही थे। सुसभ्य होने की प्रक्रिया में मानव समाज ने वे तमाम जरूरी चीजें गढ़ीं, अर्जित कीं, जिनसे उसका जीवन सरल व सुगम हुआ। कालांतर में अखबार व रेडियो की खोजों तथा लोकप्रियता के बाद टेलीविजन के आविष्कार ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। कंप्यूटर क्रांति ने तो मीडिया की संरचना में ही आमूल-चूल परिर्वतन नहीं किया है, बल्कि उसने इंसानी जिंदगी में भी जबर्दस्त हस्तक्षेप किया है। अब तो मीडिया ने प्रकारांतर से ही सही, लेकिन मानव जीवन को नियंत्रित करना शुरू कर दिया है।

दरअसल, लोकतांत्रिक व्यवस्था के विस्तार के साथ-साथ उसके एक जरूरी स्तंभ के रूप में मिशन के साथ शुरू हुई पत्रकारिता, खासकर हिंदी पत्रकारिता 20वीं सदी के आखिरी कुछ दशकों में व्यावसायिक रूप लेने लगी थी। 21वीं सदी के आते-आते तो वह बिल्कुल एक नए रूप में हमारे सामने खड़ी हो गई है। अपने व्यापक अर्थों में पत्रकारिता अब मीडिया शब्द से कहीं अधिक

पहचानी और परिभाषित होने लगी है। साफ है, अब यह एक इंडस्ट्री है, जिसका प्राथमिक मकसद सूचना देना और मनोरंजन करना तो है ही, एक बड़े वर्ग को करियर मुहैया कराना भी है। इस क्षेत्र की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके विविध रूपों, प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, साइबर मीडिया आदि के प्रति बड़ी संख्या में लोगों का रुझान बढ़ रहा है।

इस इकाई में छात्र-छात्राओं को यह जानने का मौका मिलेगा कि किस तरह से हिंदी मीडिया एक बड़े कॅरियर विकल्प के रूप में उभर रहा है। किस तरह से यह समाज को जागरूक कर रहा है। इसकी क्या-क्या चुनौतियां हैं। इस इकाई के तहत हम रोजगार और मीडिया के संबंधों का अध्ययन करेंगे और इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे।

8.2 भारत में रोज□ार का परिदृश्य

भारत में कृषि कर्म व इससे जुड़े रोजगार सदियों से समाज के जीने का आधार रहे हैं। आजादी के बाद स्थितियां बदलीं। देश में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला, विकास की नई-नई परियोजनाएं शुरू हुईं, जिनमें बड़ी संख्या में देश की पढ़ी-लिखी पीढ़ी को रोजगार के अवसर मिले। आजादी के बाद शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ता गया।

समाज के सभी तबकों में शिक्षा के प्रति बढ़ी ललक ने व्यवस्था को उनके लिए रोजगार सृजन की दिशा में कदम उठाने को बाध्य किया। हालांकि मांग और आपूर्ति के बीच का फर्क कायम ही रहा, फिर भी पिछले दो-ढ़ाई दशकों में देश के रोजगार क्षेत्र में जबर्दस्त बदलाव देखने को मिला है। आज भारत एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति है। यह बात पूरी दुनिया ने मान ली है। विकास दर के मामले में ही नहीं, मानव विकास के विभिन्न सूचकांकों के आधार पर भी हम तेजी से विकसित देशों की कतार की ओर बढ़ रहे हैं। और इन सूचकांकों में एक कसौटी रोजगार सृजन की स्थिति भी है। कुल मिलाकर देश में रोजगार का परिदृश्य सकारात्मक है। ऐसा नहीं कि बेरोजगारी की स्थिति चिंता पैदा करने वाली नहीं है, लेकिन संतोष की बात यह है कि रोजगार के नए-नए क्षेत्र खुल रहे हैं। कुल मिलाकर भारतीय परिदृश्य उम्मीदों से भरा हुआ है।

8.2.1 रोजगार की पृष्ठभूमि

1931 की गणना के अनुसार, कृषि पर गुजारा करने वालों की तादाद भारत की कुल आबादी का 73.8 प्रतिशत थी, जबकि कारखानों तथा दूसरे कारोबारों में काम करने वालों की तादाद 10.6 प्रतिशत और व्यापार-व्यवसाय वालों की तादाद 7.1 प्रतिशत थी। यूरोप के मुकाबले में यह कितनी शोचनीय अवस्था थी! क्योंकि उससे 50 वर्ष पूर्व फ्रांस और जर्मनी जैसे उन्नत देशों में भारत की अपेक्षा कहीं ज्यादा लोग खेती पर निर्भर रहा करते थे। मगर औद्योगिक उन्नति ने यूरोप की इस समस्या को हल कर दिया। भारत में इससे ठीक उलटी गंगा बही। ब्रिटिश साम्राज्य में भारत के तमाम धंधे, वाणिज्य और व्यवसाय चौपट हो गए और लोग अधिकतर खेती पर गुजारा करने लगे।

1901 में खेती पर गुजारा करने वालों की तादाद 61.06 से बढ़ती हुई 1931 में 73.8 हो गई। आजादी से पहले देश में ज्यादातर जूट और कपड़ा उद्योग अस्तित्व में थे और इन्हें भी देश के विभाजन से गहरा धक्का लगा, क्योंकि इन्हें ज्यादातर कच्चा माल मुहैया कराने वाले इलाके पाकिस्तान में चले गए। इसलिए नए आजाद हुए मुल्क के सामने गंभीर समस्या खड़ी हो गई। देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू दूरदर्शी राजनेता थे। उन्हें साफ दिख रहा था कि जिस गति से आबादी बढ़ रही है, उसमें कृषि क्षेत्र पर दबाव बढ़ेगा। फिर बेरोजगारी की समस्या सामाजिक अस्थिरता की वजह बन सकती है। इसलिए तरक्की के नए रास्ते तलाशने होंगे।

8.2.2 आजादी के बाद रोजगार की स्थिति

आजादी के बाद देश ने योजनागत विकास की रूपरेखा तैयार की गई। 1951-56 में सिंचाई, कृषि आदि क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया, लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना में पश्चिमी देशों की विकसित अर्थव्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए रणनीतियां व योजनाएं बनाई गईं। पंडित नेहरू पश्चिम की औद्योगिक प्रगति से बेहद प्रभावित थे। उन्हें देश की समस्याओं का समाधान तेज औद्योगिकीकरण में दिखा। इसमें कोई दोराय नहीं कि पंडित नेहरू की मंशा अच्छी थी और वह काफी दूर की देख भी रहे थे। लेकिन औद्योगिकीकरण की ललक में कृषि क्षेत्र उपेक्षित हो गया। नीति बनाने वाले लोग भूल गए कि औद्योगिक तरक्की के लिए कृषि क्षेत्र का भी समान विकास होना आवश्यक है। यहीं हमारी रणनीतिक चूक साबित हुई। हम अपनी नीतियां बनाते समय गांव को भूल ही गए। इसका दुष्परिणाम जल्दी ही सामने आ गया। कृषि व्यवस्था के बिगडने से इन पर आधारित ज्यादातर लघु व कुटीर उद्योग बंद हो गए। जाहिर है, यह क्षेत्र काफी बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार मुहैया कराने

वाला था। चूंकि कुटीर उद्योग बंद होने लगे, इसलिए बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार होने लगे और वे शहरों की ओर पलायन करने लगे। जाहिर ह उस वक्त शहरी ढांचे व उद्योगों में इतनी क्षमता ही नहीं थी कि वे सभी आने वाले लोगों का भार उठा सकें या सभी को काम के अवसर मुहय करा सकें। लिहाजा बड़ी संख्या में शहरों के इर्द-गिर्द स्लमों की संख्या बढ़ती गई और साथ ही बेकार लोगों की आबादी भी।

कृषि क्षेत्र की उपेक्षा का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि पढ़े-लिखे लोग खेती-किसानी से कतराने लगे। उन्हें शहरों में मामूली रकम पर मजदूरी तो सही लगने लगा, मगर वे खेतों में काम को हेय दृष्टि से देखने लगे। इससे स्थितियां काफी बिगड़ीं। श्रम मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, इंप्लॉमेंट एक्सचेंज में अपना पंजीकरण कराने वाले बेराजगारों की संख्या 1961 में 18.33 लाख थी, जो अपने पिछले साल के मुकाबले करीब 14.1 प्रतिशत अधिक थी। ऐसे में, अशिक्षित बेरोजगारों की संख्या व स्थिति के बारे में सिर्फ कल्पना ही की जा सकती ह

8.2.3 आर्थिक सुधारों के बाद का ट्रेंड

इस नियोजित आर्थिक विकास के बावजूद ग्रामीण और शहरी भारत के बीच असंतुलन की खाई बढ़ती ही रही। 1950 से 1970 के बीच देश की आर्थिक विकास दर औसतन 3.5 प्रतिशत रही। शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ। बड़ी संख्या में शिक्षण केंद्रों से डिग्री लेकर निकले नौजवानों के लिए रोजगार के अवसर उस अनुपात में पद नहीं हो पा रहे थे। इसलिए सरकार ने आर्थिक नीतियों को कुछ खोलने का फसला किया। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में लालफीताशाही को कम करने के प्रयास किए गए। सरकारी मूल्य नियंत्रण की नीति में कुछ ढील दी गई। लेकिन बेरोजगारी के मोर्चे पर स्थितियां गंभीर बनी रहीं। 1978 में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या 3 करोड़, 27 लाख, 76 हजार तक पहुंच गई थी, जो उसके पिछले साल के मुकाबले 9.1 फीसदी अधिक थी। उधर बेरोजगारों की इस संख्या का सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में दबाव साफ दिखने लगा। आरक्षण विरोधी आंदोलन के रूप में उसका उग्र रूप पूरे देश के सामने दिख रहा था। स्थिति विस्फोटक हो रही थी। ऐसे में हालात को बेहतर मोड़ देने के लिए केंद्र सरकार ने 1981 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की।

हालांकि आर्थिक सुधारों के बावजूद बेरोजगारी की समस्या पर निर्णायक जीत अब तक नहीं मिली है, लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इसने भारतीय नौजवानों के लिए अवसरों के द्वार खोल दिए हैं। 1981 के बाद अनेक विदेशी कंपनियों, निजी क्षेत्र की कंपनियों ने बड़ी संख्या में भारतीयों को रोजगार मुहैया कराया है। भारतीय कंपनियां जहां अपना विस्तार कर रही हैं, वहीं बड़ी भारी मात्रा में विदेशी कंपनियां भारत में निवेश कर रही हैं, जिससे कई क्षेत्रों में अभूतपूर्व रोजगार के अवसर पैदा हो रहे हैं। जनसंख्या विस्तार की गति को थामकर और रोजगार के वैकल्पिक दरवाजे खोलकर, लोगों को अपना कारोबार शुरू करने के लिए प्रोत्साहित करके बेरोजगारी का भार कम करने की कोशिश की जा रही है और इसका सकारात्मक असर भी देखने को मिल रहा है। अमेरिकी व बाद में यूरोपीय मंदी के बावजूद सस्ते श्रम के कारण भारतीय नवयुवकों को आउटसोर्सिंग के जरिये जबर्दस्त मौके मिल रहे हैं। श्रम व उद्योग मंत्रालय के एक सर्वे के मुताबिक, बीपीओ क्षेत्र में साल 2009 के अक्तूबर-दिसंबर के बीच 4.86 लाख नौकरियां भारतीयों को मिली थीं। सूचना-प्रौद्योगिकी के साथ-साथ, ढांचागत निर्माण, पर्यटन, विमानन, स्वास्थ्य सेवा, मीडिया आदि क्षेत्रों में अवसरों की जबर्दस्त बढ़ोतरी देखने को मिली।

8.3 मीडिया में रोज□ार की रिपोर्टिं□

तेजी से बढ़ती शिक्षा दर ने समाज में कॅरियर रोजगार को लेकर भी जबर्दस्त चेतना पैदा की। जो मीडिया (खासकर हिंदी पत्रकारिता) राजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था और सामाजिक अपराधों से जुड़ी खबरों पर अपना ध्यान केंद्रित रखता था, उसने आहिस्ता-आहिस्ता महसूस किया कि युवा पीढ़ी के सरोकार को नजरअंदाज करके वह अपनी प्रासंगिकता नहीं बनाए रख सकता। इसलिए बेरोजगारी और उससे उत्पन्न स्थितियों के साथ-साथ रोजगार कॅरियर की संभावनाओं व अवसरों को भी मीडिया के अलग-अलग माध्यमों में महत्व दिया जाने लगा।

8.3.1 खबरों में रोजगार के कवरेज

ब्रिटिश भारत में ज्यादातर फौज में युवकों की भर्ती की खबरें छपा करती थीं या फिर मजदूरों को किन्हीं वजहों से निकाले जाने की। अलबत्ता, कुछ ऐसी भी खबरें छपती थीं, जिन्हें हम रोजगार के नए अवसरों की पड़ताल करने वाली और भविष्य की शिनाख्त करती रिपोर्टिंग कह सकते हैं।

उदाहरण के तौर पर, 17 मार्च, 1936 के 'हिन्दुस्तान' में पृष्ठ संख्या- पांच पर 'अच्छे दिमागों को व्यापार में डालो' शीर्षक से एक समाचार छपा ह, जो दिलचस्प ह खबर की तफसील कुछ इस तरह ह-

'बंबई, 28 मार्च। भारत सरकार द्वारा गत नवम्बर मास में आमन्त्रित की गई ब्रिटिश शिक्षा विशेषज्ञों की समिति करीब 4 महीने तक हिन्दुस्तान की शिक्षा सम्बन्धी स्थिति का अध्ययन करके गत शनिवार को श्वित्रल्य जहाज से इंग्लैंड लौट गई।...इंग्लैंड रवाना होने से पूर्व एक पत्र प्रतिनिधि के भेंट करने पर समिति के सदस्य श्री ए. एब्बट और एचएस वुर्ड ने इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रत्येक तेज दिमाग के व्यक्ति को विश्वविद्यालय की शिक्षा से गुजरना जरूरी ह एक समाचार का जिक्र करते हुए आपने कहा कि यह बात बिल्कुल गलत ह कि इंग्लैंड में स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट मिलने के बाद होशियार लड़के विश्वविद्यालय की पढ़ाई की ओर झुकते हैं और कम होशियार तथा निकम्मे व्यापारिक-व्यावसायिक तथा दूसरे क्षेत्रों में चले जाते हैं। इंग्लैंड में अनेकों जहीन लड़के व्यापारिक-व्यावसायिक तथा दूसरे क्षेत्रों में जाते हैं। हिन्दुस्तान में भी वह वक्त जल्द आने वाला ह, जब जहीन विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में न जाकर व्यापार और व्यवसायों की ओर जाना चाहेंगे।'

आज से सात दशक से भी अधिक समय पहले भारतीय रोजगार क्षेत्र के भावी परिदृश्य का आकलन करती यह रिपोर्ट अखबार में प्रमुखता से छपी ह विशेषज्ञों की दूरदर्शिता का तो इससे इलहाम होता ही ह, साथ ही जिस अंदाज में इसे अखबार में छापा गया ह, उससे संपादक और रिपोर्टर के विजन का भी पता चलता ह बहरहाल, उदारीकरण के बाद अखबारों में रोजगार के विभिन्न पहलुओं को समेटती बड़ी-बड़ी खबरें प्रकाशित होने लगीं। कई बार वे लीड खबर भी बनती हैं। जस 12 अप्रल, 2012 के अपने अंक में दनिक हिन्दुस्तान ने एक साथ करें इंजीनियरिंग-एमबीए शीर्षक से कॅरियर से संबंधित खबर को प्रथम पृष्ठ पर दूसरी लीड के रूप में पेश किया ह इसी वर्ष अप्रल के शुरुआती अंकों में इसी अखबार ने उत्तर प्रदेश के रोजगार दफ्तरों पर बेरोजगारी भत्ता हेतु पंजीकरण कराने वालों की उमड़ी भीड़ को लीड खबर के रूप में प्रकाशित किया था। इसी तरह, नई दिल्ली से प्रकाशित प्रतिष्ठित दनिक समाचारपत्र- नवभारत टाइम्स में आठ अप्रल, 2012 को प्रथम पृष्ठ पर दो खबर प्रमुखता से छपी ह, जो दर्शाती हैं कि रोजगार और कॅरियर से जुड़ी खबरें कितनी अहम हो चली हैं। इन खबरों के शीर्षक हैं- 5 लाख स्टूडेंट आज देंगे ककळ-खएए और डीयू प्लेसमेंट का

आखिरी दौर 16 को। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में भी कॅरियर से जुड़ी खबरों को काफी महत्व मिलता ह 12 अप्रल 2012 को बीबीसी-हिंदी की वेबसाइट पर सोनी में जाएंगी 10,000 नौकरियां शीर्षक की खबर काफी देर छाई रही। कुल मिलाकर, जिन्हें हम हार्ड न्यूज के रूप में देखते हैं, उनमें भी नौकरियों व रोजगार से जुड़ी खबरों को भरपूर तवज्जो मिलने लगी ह

8.3.2 विशेष अखबारों व परिशिष्टों का प्रकाशन

चूंकि अखबारों, मीडिया का विशाल पाठक वर्ग युवा और प्रतियोगी परीक्षाओं की तयारी करने वाले युवा हैं। इसलिए इन्हें खुद से जोडने के लिए कई तरह के प्रयोग किए। यह न सिर्फ मीडिया घरानों के व्यावसायिक हितों के मुफीद था, बल्कि उसके सामाजिक सरोकार से भी प्रेरित था। आज स्थिति यह ह कि भारत में कॅरियर पर आधारित पत्र-पत्रिकाओं की न सिर्फ बहुत बड़ी संख्या ह, बल्कि उनकी जबर्दस्त लोकप्रियता भी ह

इस लिहाज से रोजगार के अवसरों पर आधारित इंप्लॉयमेंट न्यूज का नाम सबसे पहले कौंधता ह अप्रल 1966 में डीएवीपी के तहत आया यह साप्ताहिक समाचार पत्र जनवरी 1967 में प्रकाशन विभाग के अधीन आ गया। इसमें मुख्य रूप से केंद्र व राज्य सरकारों की नौकरियों के अलावा सार्वजनिक उपक्रमों एवं स्वायत्त निकायों में रिक्त स्थानों से संबंधित सूचनाएं तो होती ही हैं। कॅरियर से संबंधित दूसरे आलेख भी होते हैं। इसके पहले पृष्ठ पर किसी ज्वलंत मुद्दे पर विशेषज्ञ का विस्तृत लेख होता ह, जो सिविल सेवाओं की तयारी करने वाले छात्र-छात्राओं के लिए बेहद उपयोगी माना जाता ह शायद यही वजह ह कि देश में सर्वाधिक बिकने वाले साप्ताहिक अखबारों में एक इंप्लॉयमेंट न्यूज भी ह अब इसका हिंदी संस्करण रोजगार समाचार और इंटरनेट संस्करण भी उपलब्ध ह इनके अलावा नॉकरी डॉट कॉम, फ्रेशर्स वर्ल्ड डाट कॉम, मॉन्सटर जसी कॅरियर से संबंधित कई वेबसाइट्स भी खासा लोकप्रिय व उपयोगी हैं।

जहां तक मुख्यधारा के प्रिंट मीडिया का सवाल ह, तो साल 2019 में द कि हिन्दुस्तान ने 'हिन्दुस्तान जॉब्स' नाम से एक साप्ताहिक अखबार की शुरुआत की ह यह हर रविवार को बाजार में आता ह आखिर बड़े मीडिया घराने को इसकी जरूरत क्यों पड़ी? इस प्रश्न का जवाब देते हुए हिन्दुस्तान दिल्ली के वरिष्ठ स्थानीय संपादक प्रताप सोमवंशी बताते हैं, हमने कई सर्वे कराए और

पाया कि रोजगार की तलाश में भटक रहे युवाओं को ऐसे अखबारों की जरूरत ह, जो उन्हें उनकी योग्यता के हिसाब से अवसर की सूचनाएं खबर के रूप में पहुंचाए। इंटरनेट पर अपार सूचनाएं हैं, मगर उन तक बहुत सारे युवकों की अब भी पहुंच नहीं बन सकी ह। फिर हमारी कोशिश ह कि योग्यता के हिसाब से रोजगार के अवसरों की जानकारी दी जाए। मसलन, बारहवीं पास वर्ग के लिए कौन-कौन से क्षेत्र में कहां-कहां अवसर मौजूद हैं। ग्रेजुएट के लिए कहां क्या ह। हम पाठकों को मोटे तौर पर खबर की शक्ल में बताते हैं कि नौकरी क्या ह, आवेदन का अंतिम दिन कब ह, कितने का ड्राफ्ट लगना ह, योग्यता क्या होनी चाहिए आदि...।'

रोजगार और कॅरियर पर आधारित अनगिनत पत्रिकाएं बाजार में उपलब्ध हैं, लेकिन कॉम्पिटिशन सक्सेस रिव्यूय, सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल प्रतियोगिता दर्पण प्रतियोगिता किरणए अमर उजाला समूह की सफलता, इंडिया टुडे समूह की स्पायर ने खासी प्रतिष्ठा कमाई ह। इन तमाम पत्रिकाओं में कमोबेश प्रतियोगी परीक्षाओं के लिहाज से विषय-वस्तु होती हैं, लेकिन इनमें विभिन्न परीक्षाओं के सफल परीक्षार्थियों के इंटरव्यू नियमित रूप से प्रकाशित होते हैं, जिससे नई पीढ़ी के परीक्षार्थियों का न सिर्फ मार्गदर्शन होता ह, बल्कि कई बार वे इनसे प्रेरित होकर अपना मुकाम भी तय करते हैं। इस लिहाज से ये पत्रिकाएं सफल हैं।

पाठकों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए हिंदी और अंग्रेजी के लगभग तमाम अखबार विशेष परिशिष्टों का प्रकाशन करते रहे हैं। इनमें टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के 'एसेंट', हिन्दुस्तान टाइम्स के 'शाइन जॉब्स' खासा लोकप्रिय हैं। टाइम्स ऑफ इंडिया के एसेन्ट का इंटरनेट संस्करण जनवरी 2007 में शुरू हुआ। और इसकी लोकप्रियता का आलम यह ह कि यह टीओआई का एक ब्रांड प्रोडक्ट बन गया ह। यह दस संस्करणों में प्रसारित होता ह। अमूमन सभी अखबारों के रोजगार व कॅरियर से संबंधित परिशिष्ट नए अवसरों के बारे में तो सूचनाएं देते ही हैं, उनमें कॅरियर काउंसलरों की उपयोगी सलाहें भी होती हैं। मसलन, इनमें सरकारी क्षेत्रों व कॉरपोरेट सेक्टर व स्वशासी निकायों में नौकरियों के विज्ञापन के अलावा व्यक्तित्व को निखारने और इंटरव्यू की तैयारी करने संबंधी बारीकियों से संबंधित आलेख भी प्रकाशित होते हैं। जैसे, साक्षात्कार देते समय प्रतिभागियों को क्या-क्या ध्यान में रखना चाहिए। किस तरह के कपड़े पहनने चाहिए, कैसे साक्षात्कार लेने वालों का अभिवादन करना चाहिए, किन-किन बातों से बचना चाहिए। अक्सर ये परिशिष्ट नए किसी बड़े

पदाधिकारी का इंटरव्यू प्रकाशित-प्रसारित करते हैं, जिनसे यह पता चलता है कि उन्हें किस तरह के लोगों की तलाश है या एक नव-नियुक्त व्यक्ति से उनकी क्या-क्या अपेक्षाएं होती हैं। इनके अलावा इन परिशिष्टों में दफ्तर के भीतर की गतिविधियों से संबंधित विषयों, तनावों-दबावों से निपटने के गुर, व्यक्तित्व के विकास व साथी कर्मचारियों से व्यवहार, नेतृत्व क्षमता विकसित करने आदि से संबंधित आलेख भी होते हैं। इनका काफी बड़ा पाठक वर्ग है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हालांकि इस तरह के कार्यक्रम बहुत कम दिखाए जाते हैं, लेकिन समय-समय पर इंटरव्यू दिखाकर वह लक्ष्य वर्ग तक पहुंचने की कोशिश करता है। हिंदी में जो बेहद लोकप्रिय परिशिष्ट हैं, उनमें दैनिक जागरण का जोश, हिन्दुस्तान का करियर तरक्की, दैनिक भास्कर का करियर मंत्रा, अमर उजाला का उड़ान आदि शामिल हैं।

8.4 रोजगार से संबंधित पत्रकार

लगभग सभी अखबारों में शिक्षा व रोजगार बीट पर काम करने के लिए पत्रकारों की जरूरत होती है। यह एक महत्वपूर्ण बीट तो है ही, अखबार की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला तथा उसकी प्रसार संख्या को प्रभावित करने वाला भी होता है। इसलिए इस बीट की जिम्मेदारी देने से पहले संपादक संबंधित पत्रकार की योग्यता की गहन पड़ताल करता है। संजीदा और उत्साही युवकों को यह जिम्मेदारी सौंपी जाती है। रोजगार से संबंधित पत्रकारों को तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं।

8.4.1 उप-संपादक

किसी भी अखबार में उप-संपादकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। उन्हें न सिर्फ रिपोर्ट के एक-एक शब्द पर अपनी पैनी निगाह रखनी होती है, बल्कि उनसे भाषा व वर्तनी की अशुद्धियां दूर करने तथा आकर्षक हेडिंग लगाने की अपेक्षा की जाती है। उप-संपादक को तथ्यों की पड़ताल करते समय अतिरिक्त सावधानी बरतनी चाहिए। कहते हैं कि जिस अखबार में उप-संपादकों की फौज मजबूत हो, वह अपनी आधी जंग तो यों ही जीत चुकी होती है।

एक उप-संपादक को चूंकि टीम के साथ करना होता है और यह पेशा ही टीम वर्क का है, इसलिए उसे हमेशा यह कोशिश करनी चाहिए कि जहां कहीं भी उसे कोई परेशानी महसूस हो या कोई

आशंका हो तो साथी उप-संपादक या मुख्य-उपसंपादक की मदद लेनी चाहिए। कॅरियर और एजुकेशन परिशिष्ट पर काम करने वाले उप संपादक को हमेशा यह ध्यान में रखना पड़ता है कि वह लाखों युवाओं के भविष्य को बनाने से जुड़े पन्ने पर काम कर रहा है इसलिए पेज छोडने से पहले यह पूरी तरह से संतुष्ट हो जाना चाहिए कि कोई भी तथ्य अपुष्ट न रहे। इस संबंध में कॅरियर काउंसिलर बहुत मददगार साबित होते हैं। चूंकि यह जमाना विज्ञापनों और जन-संपर्क का है, इसलिए उप-संपादक को इस बात का संजीदगी से अहसास होना चाहिए कि उसकी एक गलत सूचना कई लोगों के लिए अनर्थकारी हो सकता है उदाहरण के लिए, दिल्ली के लक्ष्मी नगर स्थित एक शिक्षण संस्थान ने शत-प्रतिशत प्लेसमेंट के नाम पर अखबारों में विज्ञापन व एडवरटोरियल प्रकाशित कराए। जब पढ़ाई पूरी होने को आई, तो छात्रों ने प्लेसमेंट संबंधी अपनी चिंताएं जाहिर कीं। प्रबंधन उन्हें बहलाता रहा। महीनों तक प्रबंधन का रुख टालमटोल वाला देखते हुए जब छात्रों ने संस्थान के बारे में गहराई से पता किया, तो पता चला कि वह तो पंजीकृत संस्थान भी नहीं है। एक बड़े अखबार ने अपने आलेख में इस संस्थान का नाम छापा था और उस समाचारपत्र की प्रतिष्ठा को देखते हुए संस्थान की विश्वसनीयता जांचने की छात्रों ने जरूरत नहीं समझी थी। परिणामस्वरूप कई दर्जन बच्चे फर्जीवाड़े का शिकार हो गए। इनमें से एक हताश बच्चे ने जब खुदकुशी कर ली, तो संस्थान के खिलाफ मुकदमा दर्ज हुआ और प्रबंधक को जेल जाना पड़ा। लेकिन इस एक घटना ने यह साबित किया कि यदि उस अखबार ने तथ्यों की सटीक पड़ताल की होती, तो शायद कुछ लोग फर्जी संस्थान के झांसे में आने से बच जाते। इसलिए उप-संपादक को हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए। उसे न सिर्फ रोजगार के पुराने-नए क्षेत्रों के बारे में विस्तृत जानकारी अर्जित करते रहना चाहिए, बल्कि उन्हें रोचक अंदाज में परोसने का अंदाज भी उसे आना चाहिए। उसे पाठकों को आलेखों के जरिये आगाह करते रहना चाहिए कि शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में फर्जी संस्थाओं की भरमार है, इसलिए अच्छी तरह जांच-पड़ताल के बाद ही संस्थान का दामन थामें।

8.4.2 रिपोर्टर

कॅरियर रोजगार से संबंधित रिपोर्टर की जिम्मेदारी नए भविष्योन्मुखी अवसरों से संबंधित खबरें संकलित करने की तो होती ही है, उससे यह उम्मीद की जाती है कि वे अधिकृत सूत्रों के हवाले से हों। इसके लिए उसका अपनी बीट पर कमांड होना चाहिए। जैसे, मान लें कि यदि रोजगार के किसी

क्षेत्र में कोई बड़ा नीतिगत फैसला होने वाला हो, तो इसके लिए उसे संबंधित महकमें के बड़े व जिम्मेदार अधिकारी का वर्जन जरूर लेना चाहिए। साथ ही किसी विशेषज्ञ की टिप्पणी भी शामिल करनी चाहिए। रोजगार संवाददाता को यह भी मालूम होना चाहिए कि उस फैसले के क्या निहितार्थ हैं, और उसका रोजगार परिदृश्य पर क्या असर पड़ेगा। अब खबरों को प्रस्तुत करने के तरीके बदल गए हैं, कंप्लीट पैकेजिंग पर ज्यादा जोर रहता है, इसलिए रिपोर्टर को अपनी खबर में वे सारी चीजें डालनी चाहिए, जिससे डेस्क को प्वाइंटर्स, हाईलाइट्स निकालने में परेशानी न हो। चूंकि रोजगार से संबंधित खबरें आज काफी चाव से पढ़ी जाती हैं। इसलिए संवाददाता की जरा-सी अतिरिक्त मेहनत उसे खास बना सकती है।

8.4.3 फीचर लेखक

फीचर लेखन के काम को आम तौर पर लोग गंभीरता से नहीं लेते, लेकिन यह एक ऐसी विधा है, जो न सिर्फ आपको समाज में एक लेखक के तौर पर स्थापित कर सकती है, बल्कि आपकी रचनात्मकता को नए विस्तार भी दे सकती है। अर्चित रोजगार विशेषज्ञ डॉ. अशोक सिंह कहते हैं, 'दुर्योग से हिंदी ही नहीं, इन दिनों अंग्रेजी में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि नए फीचर लेखक पुराने तीन-चार आलेखों की कतरनें सामने रखते हैं और उनसे एक नया आलेख तैयार कर देते हैं। इस कोशिश में तो कई बार वाक्य और पैराग्राफ तक हूबहू उठा लिए जाते हैं। यह बेहद खतरनाक स्थिति है। शॉर्ट कट्स से कभी अच्छा रिजल्ट नहीं निकल सकता। इससे पाठकों का तो नुकसान होता ही है, फीचर लेखक की विश्वसनीयता पर भी सवाल खड़े हो जाते हैं। दरअसल, फीचर लेखक को अपने विषय को अच्छी तरह से समझने की कोशिश करनी चाहिए। जरूरी नहीं कि आप विशेषज्ञ हों, तभी किसी विषय पर कलम चलाएं। लेकिन एक फीचर लेखक को विषय से संबंधित अधिकृत स्रोतों का गहन अध्ययन करना चाहिए। और इन दिनों तो तमाम विभागों व क्षेत्रों की अधिकृत वेबसाइट्स उपलब्ध हैं। उनसे तथ्य लेते हुए आलेख तैयार करना चाहिए। जैसे, यदि कोई लेखक रूरल टूरिज्म के क्षेत्र में अवसरों पर कोई फीचर तैयार कर रहा है, तो उसे न सिर्फ यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि दुनिया में सबसे पहले इसकी शुरुआत कहां हुई और वहां इस क्षेत्र में क्या-क्या बदलाव आए, बल्कि उसे भारत के किन-किन राज्यों में किस-किस गांवों में इस तरह की योजनाएं चल रही हैं और वहां के लोगों के ऊपर पड़े उसके आर्थिक फायदे-नुकसान को भी समझने

का प्रयास करना होगा। वहां किन-किन देशों के टूरिस्ट आए और उनकी आमद किस रफ्तार में रही, उन्हें संतुष्ट करने के लिए क्या-क्या साधन हैं। यदि फीचर लेखक इन बातों से अवगत नहीं होगा, तो वह कभी आकर्षक फीचर नहीं लिख सकेगा। एक अच्छे फीचर लेखक को भाषा पर भी ध्यान देना चाहिए। उसकी भाषा में रवानी होनी चाहिए। एकदम बोलचाल की भाषा। शब्दों के दोहराव हो। ऐसा तभी संभव ह, जब उसके पास शब्द भंडार अच्छे हों। शब्द भंडार को बढ़ाने का एकमात्र तरीका ज्यादा से ज्यादा साहित्य, अखबार, पत्रिकाओं का अध्ययन ही ह। फीचर लेखकों को बॉक्स छोटे-छोटे देने चाहिए। फीचर में इंट्रो की भूमिका सबसे अधिक ह। वह पाठक को पूरा आलेख पढने का एक तरह से न्यौता ह। इसलिए क्च्ची हेडिंग से कम महत्वपूर्ण इंट्रो नहीं ह। इसलिए इसमें वही जानकारी देनी चाहिए, जो खास हो और पाठकों को बिल्कुल नई-सी लगे। रोजगार के क्षेत्र के फीचर लेखक को हमेशा यह ध्यान में रखना पड़ता ह। कि उसका पाठक वर्ग कौन-सा ह। यदि 12वीं पास विद्यार्थियों के लिए कोई फीचर लिखा जा रहा हो, तो उसे उनकी मनोवस्था का भी खयाल रखना चाहिए।

8.5 सारांश

दुनिया भर में प्रिंट मीडिया के सिकुडने की आशंकाएं जताई जा रही हैं, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में स्थितियां बिल्कुल अलग ह। यहां शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ और आर्थिक तरक्की की रफ्तार को देखते हुए न सिर्फ मीडिया इंडस्ट्री के लिए बेहतर भविष्य ह, बल्कि यह इंडस्ट्री रोजगार मुहय्या कराने के बड़े अवसर भी लेकर आ रही ह। लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि यह आम इंडस्ट्री नहीं ह। पत्रकार सिर्फ कर्मचारी नहीं होते हैं, उनके कंधों पर लोकतंत्र और समाज के भविष्य की जिम्मेदारी होती ह। इसीलिए जब शीर्ष अदालत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति काटजू कहते हैं कि बौद्धिकता पत्रकारों की बुनियादी खुराक होनी चाहिए, तो उसके मूल में यही चिंता ह। कि यह एक प्रतिष्ठित पेशा ह। और इसकी आबरू हर कीमत पर बचाई जानी चाहिए।

8.6 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 आजादी से पूर्व देश में रोजगार की क्या स्थिति थी?

प्रश्न-2 आर्थिक उदारीकरण के बाद देश में रोजगार के परिदृश्य में आए बदलाव पर टिप्पणी लिखें।

प्रश्न-3 कॅरियर और एजूकेशन से संबंधी परिशिष्टों की जरूरत व भूमिका को रेखांकित करें।

प्रश्न-4 एक रोजगार बीट के रिपोर्टर को किन-किन बातों का खयाल रखना चाहिए?

प्रश्न-5 फीचर लेखन विधा पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

8.7 संदर्भ सूची

1- भारतीय पत्रकारिता कोश- विजयदत्त श्रीधर

2- जर्नलिज्म इन मॉडर्न इंडिया- रॉलैंड ई वोल्सले

3- संपादन कला- डॉ. हरिमोहन

4- आधुनिक पत्रकारिता- डॉ. अर्जुन तिवारी

5- दैनिक हिन्दुस्तान (आर्काइव)

ईकाई-9

अपराध और मीडिया

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अपराध की अवधारणा एवं स्वरूप

9.3 भारत में अपराध एवं माफिया का आरंभ

9.4 भारत में अपराध के नए ट्रेंड

9.5 भारत के संदर्भ में आँकड़ों में अपराध की वर्तमान स्थिति

9.6 अपराध, मीडिया और समाज

9.7 टेलीविजन के दौर में अपराध पत्रकारिता

9.8 अपराध पत्रकारिता के समाज पर सकारात्मक प्रभाव

9.9 अपराध पत्रकारिता के समाज पर नकारात्मक प्रभाव

9.10 क्राइम शो एवं उनकी निर्माण प्रक्रिया

9.11 सारांश

9.12 शब्दावली

9.13 अभ्यास प्रश्न

9.14 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. विद्यार्थियों को अपराध की अवधारणा एवं स्वरूप से परिचित कराना।
2. भारत में अपराध के नए ट्रेंड और वर्तमान स्थिति से विद्यार्थियों को अवगत कराना।
3. भारत में अपराध पत्रकारिता की शुरुआत और विस्तार की परिस्थतियों से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
4. उपग्रह टेलीविजन के दौर में अपराध पत्रकारिता के बदलते रूप से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
5. बदलती अपराध पत्रकारिता के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों से विद्यार्थियों को अवगत कराना
6. टीवी पर दिखाए जाने वाले क्राइम शो के निर्माण के विभिन्न चरणों से विद्यार्थियों को अवगत कराना

9.1 प्रस्तावना

बीते कई दशकों से आज तक अपराध की दुनिया में वास्तव में बहुत बदलाव आए हैं। इस इकाई में अपराध, मीडिया और समाज के बीच का संबंध टटोलने की कोशिश की जाएगी। अपराध की अवधारणा पर बात करते हुए उसके बदलते स्वरूप, ट्रेंड और अपराध को कवर करने के मीडिया के तौर तरीकों और समाज पर असर को संक्षेप में बताया जाएगा। इसके अलावा टीवी पर दिखाए जाने वाले क्राइम शो के निर्माण के विभिन्न तौर तरीकों की भी जानकारी दी जाएगी।

9.2 अपराध की अवधारणा एवं स्वरूप

मानव समाज के आरंभ से अपराध की मौजूदगी रही ह जिस वक्त मानव समाज की रचना हुई अथवा मनुष्य ने अपना सामाजिक संगठन आरंभ किया, उस वक्त अपने संगठन की रक्षा के लिए कुछ नति क, और सामाजिक आदेश बनाए। इन आदेशों का पालन मनुष्य का धर्म बताया गया। लेकिन, शुरुआती दौर से इन आदेशों के विरुद्ध काम करने की मनुष्य की प्रवृत्ति रही।

अवधारणा :

अपराध की व्याख्या करने का प्रयास सदियों से हो रहा ह फिर भी, कुछ परिभाषाओं के जरिए अपराध की अवधारणा को समझने की कोशिश की जाती ह

"अपराध कानूनी तौर पर वर्जित और साभिप्राय कार्य है, जिसका सामाजिक हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, जिसका अपराधिक उद्देश्य है और जिसके लिए कानूनी तौर से दण निर्धारित है।" (हाल जिरोम)

"उन कार्यों को करने में चूक जो समाज में प्रचलित मानदण की दृष्टि में समाज के कल्याण के लिए इतने हानिकारक हैं कि उनके संबंध मे कार्यवाही किसी निजी पहलशक्ति या अव्यवस्थित प्रणालियों को नहीं सौंपी जा सकती परन्तु वह कार्यवाही संगठित समाज द्वारा परीक्षित प्रकियाओं के अनुसार की जानी चाहिए।" (माउरेर)

"समुदाय का बहुमत जिसे सही बात समझे, उसके विपरीत काम करना अपराध है।" (सारजेंट स्टीफन)

अपराध की अनेक व्याख्याएं हैं, जिनके बीच एक स्पष्ट व्याख्या देना कठिन ह फ्रायड वर्ग के विद्धान् अपराध को कामवासना का परिणाम बतलाते ह तथा हीली जसे शास्त्री उसे सामाजिक वातावरण का परिणाम कहते हैं। इस तरह अलग अलग विद्वानों के अपने मत हैं। लेकिन, आधुनिक वक्त में अपराध की पूरी अवधारणा को सिर्फ पुराने मतों के आधार पर नहीं देखा सकता। आज नए किस्म के अपराध हो रहे हैं। इंटरनेट के आने के बाद साइबर अपराधों की पूरी फेहरिस्त ह पोर्न फिल्मों के निर्माण से लेकर जाली सीडी बनाने तक कई अलग अपराध हैं, जिनकी कुछ वर्षों पूर्व तक कल्पना कठिन था। इस तरह अपराध की पहचान अब यही ह कि जो काम कानून संगत नहीं ह, वो अपराध ह और जिसने कानून तोड़कर काम किया, वह अपराधी।

9.3 भारत में अपराध एवं माफिया की शुरु त

चोरी, लूटपाट, हत्या, डकैती, मिलावटखोरी, ज़मीन का हड़पना और भ्रष्टाचार जैसे अपराध सदियों से होते रहे हैं। देश में आज़ादी से पहले अंग्रेजों की सत्ता थी और उनके अपने नियम-कानून थे। उस दौर में अपराध की कानूनी परिभाषा भी अलग थी। लेकिन, 15 अगस्त 1947 को भारत को मिली आज़ादी के बाद देश में एक संविधान बना। नए नियम-कायदों ने लोगों के अधिकारों को अपराध के दायरे से बाहर निकाला। आजादी के बाद वास्तव में कानूनों में काफी बदलाव आए और लोगों को इसका फायदा भी मिलना शुरू हुआ।

माफिया की शुरुआत :

आज़ादी के बाद भारत में संगठित अपराध की शुरुआत हुई। संगठित अपराध यानी वे अपराध, जो बड़े पैमाने पर किए जाते हैं। संगठित अपराधों के पीछे अपराधियों का बड़ा समूह काम करता है। इनका कार्यक्षेत्र भी अपेक्षाकृत विस्तृत होता है और इनके पास संसाधन अधिक होते हैं। संगठित अपराध को अंजाम देने वाले अपराधियों को 'माफिया' भी कहा जाता है। मूं माफिया इटली के सिसिली के अपराधी तत्व थे, जिनकी अपने क्षेत्र में तूती बोलती थी। भारत में माफिया या संगठित अपराध की शुरुआत मुंबई से मानी जाती है। आज़ादी के बाद मुंबई देश के युवाओं के मन में एक सपने की तरह जगह बना रहा था। माना जाता है कि इसी दौर में मुंबई शहर में संगठित अपराध की शुरुआत गैंबलिंग और नशीले पदार्थों की तस्करी से हुई।

अयूब खान : अयूब खान उर्फ़ अयूब लाला को मुंबई माफिया का पहला बड़ा नाम कहा जा सकता है। अफ़गानिस्तान से आकर मुंबई में बसे लगभग 13000 अफ़गानियों के एक संगठन पख्तून जिरगा ए हिंद का संस्थापक प्रमुख भी अयूब लाला ही था। मुंबई में चलने वाले तमाम गैम्बलिंग क्लब, जिसे स्थानीय मारवाड़ी, मराठी या मुसलमान चलाते थे, उन सब पर अयूब लाला का नियंत्रण था।

वरदराजन मुदलियार : माफिया डॉन का दर्जा वरदराजन मुदलियार ने हासिल किया। मुंबई अंडरवर्ल्ड की दुनिया में 1960 से 1980 तक वरदराजन का अघोषित राज चला। मुदलियार ने जुएखोरी, नशीले पदार्थों की तस्करी के धंधे में कामयाबी हासिल की तो फिर डॉक थेफ्ट, सुपारी और कई दूसरी चीजों की तस्करी शुरु की। वरदराजन ने अपनी पहचान रॉबिनहुड सरीखी बनाने की कोशिश की। 80 के दशक में पुलिस ने वरदराजन के गुर्गों को निशाना बनाना शुरु किया तो वो चेन्नई भाग गया। 1988 में उसकी मौत हो गई। मणिरत्नम की 'नायकन' और फिरोज खान की 'दयावान' जैसी फिल्में कथित तौर पर वरदराजन की जिंदगी से प्रेरित थीं।

हाजी मस्तान : साइकिल रिपेयरिंग की दुकान चलाने वाले मस्तान मिर्जा ने कस्टम ड्यूटी बचाने के खेल को समझा। उस दौरान देश में इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का क्रेज था। 1950 के दशक में मोरारजी देसाई ने मुंबई प्रेसीडेंसी का मुख्यमंत्री बनने के बाद शराब के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया और मस्तान ने शराब की स्मगलिंग की और खूब मुनाफा कमाया। आपात काल में 18 महीने जेल में रहने के बाद मस्तान मिर्जा बाहर निकला तो उसने हाजी मस्तान के रुप में पहचान बनाई। अपनी अकूत दौलत को उसने फिल्मों में भी लगाया। कई बड़ी फिल्मी हस्तियों के साथ उठना बैठना शुरु किया। उसके बढ़ते प्रभाव के चलते करीम लाला और वरदराजन जैसे डॉन ने उससे दोस्ती की। हाजी ने सोना नाम की एक अभिनेत्री से शादी भी की। राजनीति में पैर जमाने की नाकाम कोशिश के बाद उसकी दिल की बीमारी से मौत हो गई।

दाऊद इब्राहिम : हाजी मस्तान के गैंग में शामिल रहे दाउद इब्राहिम ने मुंबई अंडरवर्ल्ड का नाता अंतरराष्ट्रीय अपराध जगत से जोड़ दिया। दाउद से पहले माफिया डॉन स्मगलिंग से लेकर बाकी कई अपराध को अंजाम दे रहे थे, लेकिन दाउद ने इन अपराधों के साथ 12 मार्च 1993 के मुंबई विस्फोट को अंजाम देने में बड़ी भूमिका निभाकर आम लोगों के बीच नफरत फैलाने का काम भी किया। दाउद के गैंग के काम करने का अंदाज बिलकुल अलग था और उसे 'डी कंपनी' के नाम से जाना गया। दाउद ने फिल्मी हस्तियों से वसूली को बड़ा धंधा बनाया। टी सीरिज के मालिक गुलशन कुमार की हत्या फिरौती न देने की वजह से की गई। 2009 में दाऊद इब्राहिम को भारत के संगठित अपराधों का 'गॉडफादर' बताते हुए अमेरिका के एक प्रभावशाली रिपब्लिकन सांसद ऐड रॉयस ने विदेशी मामलों पर सदन की कमिटी द्वारा पायरेसी पर आयोजित बैठक में कहा था कि डी-कंपनी का बॉलवुड में भारी दखल है वह बड़े पैमाने पर पायरेसी में शामिल है 2003 में संयुक्त राष्ट्र दाउद को अंतरराष्ट्रीय आतंकवादी घोषित कर चुका है

इसमें कोई शक नहीं है कि मुंबई संगठित अपराध का गढ़ रहा है दाऊद इब्राहिम के वक्त में ही अरुण गवली गैंग, अमर नायक गैंग और छोटा राजन (दाउद का साथी भी रहा) गैंग की भी गतिविधियां थी। लेकिन, मुंबई के अलावा कुछ दूसरे शहरों में भी अंडरवर्ल्ड की गतिविधियां सुर्खियां बटोरती रहीं हैं। मसलन बेंगलौर में 1960 के दशक में कोडीगेहल्ली मुने गौड़ा यहां का पहला अंडरवर्ल्ड डॉन बना। शुरुआत में हफ्ता वसूली करने वाला गौड़ा कई दूसरे धंधों में उतर गया। 70 के दशक में कोटवाल रामचंद्रा और जयराज का नाम उभरा। और हफ्तावसूली का दायरा वेश्यालयों और ताड़ी

बनाने वालों से बढ़कर शराब की दुकानों, मसाल पार्लर, गेम पार्लर आदि तक पहुंच गया। रामचंद्रा और जयराज के राजनीतिक संपर्क भी थे। 1990 में मुथप्पा राज, अग्नि श्रीधर जैसे नामों ने बेंगलौर अंडरवर्ल्ड को और सुर्खियां दिलाई।

लेकिन, आज संगठित अपराध का गढ़ कोई एक शहर या राज्य नहीं है। अब माफिया अलग अलग रुपों और अलग अलग शहरों में अपना काम कर रहा है। आज खनन माफिया से लेकर तेल माफिया तक अलग अलग क्षेत्रों के माफिया हैं, जो अलग अलग राज्यों में सक्रिय हैं।

9.4 भारत में अपराध के नए ट्रेंड

एक वक्त था, जब कुछ गिने-चुने किस्म के अपराधों से जुड़ी ख़बरें मीडिया में जगह पाती थीं। लेकिन, अब इतने अलग अलग किस्म के अपराध हो रहे हैं, जिनकी कल्पना भी कुछ वर्षों तक संभव नहीं थी। चोरी, हत्या, लूट, बलात्कार, मिलावटखोरी, फिरौती, अपहरण, नशीले पदार्थों और हथियारों की तस्करी के अलावा कांट्रैक्ट किलिंग, पोर्न फिल्मों का निर्माण व वितरण, पाइरेटेड फिल्मों की कालाबाजारी, क्रिकेट व दूसरे खेलों में सट्टेबाजी, मनी लॉन्ड्रिंग व हवाला, गैरकानूनी प्रव्रजन, ऑनलाइन जालसाजी, क्रेडिट कार्ड से धोखाधड़ी जैसे सैकड़ों अलग किस्म के अपराध हैं। इंटरनेट की लोकप्रियता के साथ साइबर अपराधों में तेजी से इजाफा हुआ है। लिहाजा साइबर कानून को लगातार सख़्त किए जाने की वकालत हो रही है।

9.5 भारत के संदर्भ में आँकड़ों में अपराध की वर्तमान स्थिति

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की ताजा रिपोर्ट के अनुसार देश में 2008, 2009, 2010 में अपराध के क्रमश: 20,93,397, 21,21,345 और 22,24,831 मामले दर्ज किये गए। इस प्रकार से 2008 से 2010 तक तीन वर्षो के दौरान पूरे देश में अपराध के 63,39,555 मामले सामने आए। आंकड़ों से

इतर बात करें तो सच यही है कि हज़ारों अपराध दर्ज नहीं हुए। इस तरह की शिकायतें लगातार सामने आई हैं।

9.6 अपराध, मीडिया और समाज

आज़ादी के बाद समाचार पत्रों में सामाजिक, वाणिज्यिक, खेल, फिल्म और आर्थिक मसलों से जुड़ी ख़बरें प्रमुखता से दिखायी देती थी, जबकि अपराध से संबंधित ख़बरों को बमुश्किल ठीक-ठाक जगह मिल पाती थी। लेकिन, 1970 के दशक में आंदोलनों के दौर और शहरीकरण की रफ्तार के बीच अपराध संबंधी ख़बरें अख़बारों में जगह पाने लगीं। हालांकि, आंदोलनों या शहरीकरण का अपराध से कोई सीधा वास्ता नहीं है, लेकिन गरीबी, बेरोजगारी, लोगों की नाराजगी और रोजी रोटी की तलाश में शहर पहुंच रहे युवाओं के बिखरते सपनों के बीच अपराध की तरफ बढ़ते कदम कहानियों में तब्दील होने लगे।

इसी दौर में समाज में अपराधों की संख्या बढ़ी तो लोगों की दिलचस्पी आपराधिक ख़बरों में बढ़ी। उधर, लंदन के टेबलॉयड समाचार पत्रों ने खासतौर से अपराध रिपोर्टिंग की संभावनाओं और उसके कवरेज पर बाजार से मिलने वाली प्रतिक्रियाओं को महसूस किया और इसके साथ वहां अपराध की कवरेज बढ़ने लगी। यह ट्रेंड भारत में धीरे धीरे उभार लेने लगा। अपराध कथाओं में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी तो समाचार पत्रों के साथ पत्रिकाओं में भी इस तरह की कथाएं जगह पाने लगी। इसी दौरान 1976 में इलाहाबाद के मित्र प्रकाशन ने सत्यकथा का प्रकाशन आरंभ किया। मित्र प्रकाशन के मालिक कृतेन्द्र मोहन मित्र कहते हैं, "दरअसल, इस वक्त तक तमाम मशहूर पॉकेट बुक्स बाजार से नदारद होना शुरु हो गए थे, जिसने नयी पॉकेट बुक्स के लिए बाजार की संभावना बना दी। दूसरी तरफ, मनोहर कहानियां के संवाददाता बड़ी संख्या में अपराध कहानियां भेज रहे थे, जिन्हें मनोहर कहानियां में प्रकाशित करना मुश्किल हो रहा था, लिहाजा सत्यकथा का स्वरूप तय हुआ। "

अपराध कथाओं पर आधारित पत्रिकाओं की सफलता ने मुख्यधारा के अखबारों और पत्रिकाओं को भी प्रभावित किया। उन्होंने एक विशेष किस्म का पाठक वर्ग तय किया,जो अपराध कथाओं में खूब दिलचस्पी लेता था। नतीजा समाचार पत्रों में अपराध संबंधी ख़बरें अनिवार्य रूप से जगह पाने लगीं। आज अपराध की खबरों के बिना अखबार को अधूरा माना जाता है, क्योंकि आज का पाठक

अपराध की खबरों को बड़े चाव से पढ़ता ह इतना ही नहीं, हत्या-बलात्कार और लूट जसी आपराधिक ख़बरें समाचार पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर जगह पाती हैं। उदाहरण के लिए 24 मार्च 2012 दिन शनिवार को नवभारत टाइम्स दिल्ली की मुख्य खबर व आमुख निम्नलिखित था।

शीर्षक- रोज में हत्या

नई दिल्ली। शराब के नशे में धुत दो लोगों ने एक ऑटो चालक को ईंटों से पीट पीटकर मार ला। ऑटो चालक का कसूर सिर्फ इतना था कि उसका रिक्शा आरोपियों की इनोवा कार को छू गया था। दोनों आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया है।

कुछ दशक पहले तक अपराध की बड़ी-बड़ी घटनाओं को एक कालम में जगह मिलना मुश्किल होता था, परन्तु आज अखबारों में अपराध की हर छोटी-से-छोटी घटनाओं को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जा रहा ह वरिष्ठ पत्रकार पंकज पचौरी कहते हैं," क्राइम किसी भी समाज का हिस्सा होता ह और जनता में इसे जानने की इच्छा भी होती ह और उन्हे क्राइम के बारे में अगाह करना मीडिया की जिम्मेदारी भी होती ह दुनिया भर में कई अखबारों में क्राइम पर पूरे पन्ने छपते हैं।"

9.7 टेलीविजन के दौर में अपराध पत्रकारिता

टेलीविजन समाचार चनलों के आगमन और विस्तार ने अपराध पत्रकारिता को नए आयाम दे डाले। अब अपराध से जुड़ी ख़बर बुलेटिन की पहली ख़बर बन सकती ह पहली हेडलाइन बन सकती ह इसके अलावा, यदि अपराध से जुड़ी कोई सनसनीखेज ख़बर दर्शकों को टेलीविजन से बाँधकर रख सकती ह तो उस पर केंद्रित आधे या एक घंटे का विशेष कार्यक्रम बनाया जा सकता ह

दूरदर्शन युग में अपराध ख़बरें सिरे से नदारद दिखती थी, लेकिन उपग्रह टेलीविजन के दौर में अपराध ख़बरों के लिए अच्छी जमीन तयार की। 17 मार्च 1998 का दिन अपराध से जुड़े कार्यक्रमों के लिहाज से ऐतिहासिक ह जब ज़ी टीवी पर इंडियाज मोस्ट वांटेड कार्यक्रम की शुरुआत हुई। सुहब इलियासी के नेतृत्व में इस कार्यक्रम की प्रस्तुति, भाषा और अंदाज ने टीवी पर अपराध रिपोर्टिंग की नयी परिभाषा गढ़ी। सुहब इलियासी इस कार्यक्रम के बारे में कहते हैं, "कार्यक्रम का प्रस्तुतिकरण हम अलग करना चाहते थे, लेकिन ऐसा नहीं ह कि हमने सब योजनाबद्ध तरीके से किया।"

अपराध संबंधी कार्यक्रमों को लोकप्रियता मिली तो टेलीविजन चैनलों पर इनकी संख्या में जबरदस्त इजाफा हुआ। 2006 में तो प्रमुख पांच-छह चैनलों पर 20 से ज्यादा क्राइम शो प्रसारित हो रहे थे। इनमें आज तक पर प्रसारित होने वाले वारदात और जुर्म, स्टार न्यूज पर प्रसारित होने वाले सनसनी और रेड अलर्ट, आईबीएन सेवन पर और प्रसारित होने वाले क्रिमिनल और गिरफ्तार व जी न्यूज के क्राइम रिपोर्टर और क्राइम फाइल और इंडिया टीवी का एसीपी अर्जुन मुख्य थे।

अपराध से जुड़े कार्यक्रम ख़बर को सनसनीखेज बनाने की अधिक स्वतंत्रता देते हैं। फिर, इसमें भी कोई दो राय नहीं कि अपराध अपने आप में सनसनीखेज होता है। वरिष्ठ पत्रकार शम्स ताहिर खान कहते हैं, "हर इंसान के भीतर जुर्म करने की प्रवृत्ति होती है। उसके अवचेतन में एक अपराधी भी होता है और टेलीविजन पर जब अपराध संबंधी ख़बरें आती हैं तो दर्शक उसे देखना चाहता है।"

वरिष्ठ पत्रकार एनके सिंह क्राइम शो पर अपनी टिप्पणी में कहते हैं, "क्राइम' किसी भी समाज की धड़कन बताता है। हम 'क्राइम शो' के जरिए लोगों को अगाह करते हैं और उसका मकसद लोगों को सचेत करना है। जैसे अगर आप रात में गाड़ी से कहीं जा रहें हैं तो किसी अनजान व्यक्ति के द्वारा गाड़ी रोकने का इशारा करने पर गाड़ी न रोंके, वरना किसी क्राइम के शिकार हो सकते हैं। इसमें गलत वहां होता है, जब आप अपराध पर सचेत करने की बजाय अपराधियों का महिमामंडन करते लगते हैं। वरना इसका सही तरीके से इस्तेमाल हो तो सरकार पर दबाव पड़ता है। अगर आप अपराध से जुड़े सुप्रीम कोर्ट के फैसलों को दिखाते हैं तो उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। दुनिया में एक बड़ा तबका अपराध से जुड़ी खबरों को देखता है।"

ज़ी न्यूज से जुड़े वरिष्ठ टीवी पत्रकार सतीश के सिंह कहते हैं," क्राइम शो' का एक बड़ा मकसद लोगों को सावधान करना है। यह हमारा समाजिक ट्रेंड दिखाता हैं। हम क्राइम को केवल परंपरागत अपराध से जोड़ कर देखते हैं तो यह सही नहीं है। इसका दायरा बहुत बड़ा है। आदर्श सोसाइटी घोटाला सहित अन्य आर्थिक घोटाले भी क्राइम के दायरे में ही आते हैं।"

इसमें कोई दो राय नहीं है कि देश में अपराध बढ़ रहे हैं। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरों के आँकड़े गवाह हैं। फिर, यह कहना भी ग़लत नहीं है कि अपराध संबंधी ख़बरों में लोगों की दिलचस्पी पहले के मुकाबले कहीं ज्यादा है। टेलीविजन कार्यक्रम अपराध संबंधी ख़बरों को रोचक, मनोरंजक और सनसनीखेज बनाकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे दर्शक बंध जाते हैं।

यद्यपि यह कहना भी ठीक नहीं ह कि समाज में आपराधिक प्रवृति का संचार हो रहा ह इसलिए लोग इन ख़बरों को पढ़ना-देखना पसंद कर रहे हैं बल्कि ये ख़बरें समाज को उनके आस-पास हो रहे अपराधों से सचेत भी करती हैं। अपराधी आपराधिक घटनाओं को किस प्रकार अंजाम देते हैं, किस क्षेत्र में अपराध बढ़ रहा ह, अपराध का स्वरूप क्या ह, यहाँ तक कि इन अपराधों से स्वयं की रक्षा किस प्रकार की जा सकती ह- इन सभी प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं 'अपराध पत्रकारिता से'।

9.8 अपराध पत्रकारिता के समाज पर सकारात्मक प्रभाव

अपराध पत्रकारिता के समाज पर सकारात्मक प्रभाव अग्रलिखित हैं-

1-अपराध पत्रकारिता समाज में जागरूकता लाने का सशक्त माध्यम ह

2-अपराध ख़बरों का प्रकाशन-प्रसारण सरकारों के भ्रष्ट-तंत्र पर अंकुश लगाता ह

3-सामाजिक सचेतता लाने में अपराध पत्रकारिता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती ह

4-विभिन्न प्रकार से हो रहे अपराधों से बचाव के उपायों का ज्ञान अपराध पत्रकारिता के माध्यम से होता ह

5-अपराध के तरीकों की पूर्व जानकारी होने से बचाव हेतु मानसिक मजबूती प्राप्त होती ह

इस बीच, बड़ा सवाल अपराध संबंधी ख़बरों के समाज पर असर को लेकर खड़ा होता ह, जिस पर लगातार बहस होती ह मीडिया ट्रायल भी एक बड़ा मसला ह क्राइम रिपोर्टरों का सिर्फ और सिर्फ पुलिसिया सूत्रों पर निर्भर रहना हाल के दिनों में अहम सवाल बना ह मीडियाकर्मियों को अपराध संबंधी ख़बरों को कवर करने के दौरान अत्याधिक सचेत रहने की आवश्यकता लगातार महसूस हुई ह फरवरी 2012 में नोएडा में 10वीं कक्षा की एक नाबालिग लड़की के साथ बलात्कार की घटना के बाद पुलिस ने पीड़ित का नाम प्रेस नोट के जरिए मीडिया को उपलब्ध करा दिया। कुछ अख़बारों और वेबसाइट्स आदि पर पीड़ित का नाम प्रसारित भी हो गया। इस मामले में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) ने उत्तर प्रदेश सरकार से शहर के पुलिस अधीक्षक के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग भी की।

9.9 अपराध पत्रकारिता के समाज पर नकारात्मक प्रभाव

सनसनीखेज क्राइम रिपोर्टिंग और अपराध संबंधी ख़बरों को मिलते ज्यादा स्पेस के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी बताए जाते हैं। मसलन-

1-अविवेकपूर्ण अपराध रिपोर्टिंग से समाज अपराध की ओर उन्मुख हो रहा ह

2-आपराधिक घटनाओं के प्रकाशन-प्रसारण से सामाजिक अविश्वास बढ़ रहा ह

3-आपराधिक घटनाओं के बढ़ा-चढ़ाकर किये गये प्रस्तुतीकरण के कारण आपराधिक रिपोर्टिंग की विश्वसनीयता घट रही ह

4-अपराध कथाएं बच्चों को अपराध की तरफ उन्मुख कर रही हैं। आपराधिक ख़बरों में अपराधी को हीरों की भाँति प्रस्तुत किया जाता ह जिसके कारण किशोरों व युवाओं में अपराधियों के प्रति गरिमा का भाव बढ़ रहा ह

5-अपराध संबंधी ख़बरों में आरोपी को दोषी सिद्ध कर दिया जाता ह, जिससे समाज में उसका मान घटता ह मीडिया ट्रायल की वजह से कुछ घटनाओं में आरोपी ने खुदकुशी तक कर डाली।

दरअसल, अपराध संबंधी ख़बरों की संख्या में बढ़ोतरी के बावजूद क्राइम संबंधी ख़बरों की समझ रखने वाले पत्रकारों की संख्या अभी भी हमारे यहां गिनी-चुनी ह आईआईएमसी में एसोसिएट प्रोफेसर आनंद प्रधान क्राइम रिपोर्टिंग की नयी प्रवृत्ति पर अपनी टिप्पणी में कहते हैं, ''असल में, अपराध रिपोर्टिंग के साथ सबसे बड़ी समस्या यह हो गई ह कि वह पूरी तरह से पुलिस और अन्य जांच एजेंसियों की प्रवक्ता बन गई ह वह पुलिस के अलावा कुछ नहीं देखती ह, पुलिस के कहे के अलावा और कुछ नहीं बोलती ह और पुलिस के अलावा और किसी की नहीं सुनती ह इस तरह अपराध रिपोर्टिंग पुलिस की, पुलिस के द्वारा और पुलिस के लिए रिपोर्टिंग हो गई ह स्थिति यह हो गई ह कि अधिकांश क्राईम रिपोर्टर पुलिस की आफ द रिकार्ड ब्रीफिंग या कानाफूसी में दी गई आधी-अधूरी सूचनाओं, गढ़ी हुई कहानियों और अपुष्ट जानकारियों को बिना किसी और स्रोत से कन्फर्म या चेक किये ''एक्सक्लूसिव'' खबर की तरह छापने/दिखाने में कोई संकोच नहीं करते हैं।''

9.10 क्राइम शो एवं उनकी निर्माण प्रक्रिया

टेलीविजन पर प्रसारित अपराध कार्यक्रमों को तराजू के एक पलड़े पर रखकर तोलना ठीक नहीं ह इन कार्यक्रमों से कई बार अपराधियों को पकड़ने में भी मदद मिली ह तो अनेक बार लोगों को सचेत करने में। इंडियाज मोस्ट वांटेड कार्यक्रम के प्रसारण के दौरान तो 84 अपराधियों को पकड़ा भी गया। लेकिन, दूसरा सच यह भी ह कि अपराध कार्यक्रमों का प्रस्तुतिकरण अनावश्यक तौर पर अधिक से अधिक नाटकीय रखा जाता ह

एक क्राइम शो के निर्माण प्रक्रिया को समझना हो तो उसे कुछ चरणों में बाँटा जा सकता ह

1-आइडिया : देश में रोजाना सड़कों अपराध होते हैं, लेकिन क्राइम शो में महज सात या आठ ख़बरे दिखायी जाती हैं। तो कौन सी ख़बर चुनी जाए, कौन सी छोड़ी जाए, ये उस खबर के तत्वों और उसमें छिपे आइडिए पर निर्भर करता ह आइडिए का तत्व मूलत: साप्ताहिक क्राइम कार्यक्रमों से ज्यादा संबंध रखता ह जहां घटना एक-दो दिन या कुछ पुरानी भले हो, लेकिन उसमें कोई ऐसा कोण छिपा हो,जो ख़बर में जान फूंक सकता ह

2-शूटिंग : क्राइम शो का दूसरा मूल तत्व ह शूटिंग या विजुअल। दरअसल, अपराध अपने आप में जितना सनसनीखेज होता ह उतना ही गोपनीय भी, लिहाजा दर्शकों को अपराध से हर पहलू से रुबरु कराने के लिए ज्यादा से ज्यादा अहम दृश्यों को दिखाने की आवश्यकता होती ह आज तक चैनल में कई वर्षों तक क्राइम संबंधी कार्यक्रमों के प्रोड्यूसर रहे नाज़िम नक़वी कहते हैं,"अपराध से जुड़ी हर खबर टेलीविजन पर बेहतरीन विजुअल चाहती ह अगर आप हत्या से जुड़ी किसी खबर की शूटिंग के लिए गए हैं तो आपको खून के धब्बे, हत्या में इस्तेमाल हथियार, गाड़ी, आरोपी और मृतक की तस्वीरें और संबंधित लोगों की बाइट आदि की दरकार होती ह इनके बिना आप अच्छी स्टोरी नहीं बना सकते।"

3-नाट्य रूपांतरण : टेलीविजन में अपराध रिपोर्टिंग करते वक्त नाट्य रुपांतरण की शैली अब खासी प्रचलित हो गई ह कई बार रिपोर्टर के पास खबर की पूरी जानकारी होती ह, लेकिन उससे संबंधित दृश्यों का अभाव होता ह ऐसे में नाट्य रुपांतरण अथवा री-कंस्ट्रक्शन का सहारा लिया जाता ह साफ ह कि अपराध कैमरे के सामने नहीं किए जाते और चैनलों को विजुअल चाहिए तो यह तरीका लोकप्रिय हो रहा ह नाट्य रुपांतरण के दौरान घटना स्थल अमूमन वही चुना जाता ह जहां घटना घटी ह कलाकारों को स्क्रिप्ट दी जाती ह और जरुरी होने पर संवाद भी। कोशिश की जाती ह कि कलाकारों का चेहरा मोहरा भी वास्तविक चरित्रों से मिलता-जुलता हो।

नाट्य रुपांतरण के दौरान कई बार विकट समस्याएं आती हैं। मसलन कलाकार नहीं मिलते अथवा घटना स्थल पर शूट करने की इजाजत नहीं होती। क्राइम रिपोर्टर येन-केन-प्रकारेण समस्याओं को सुलझाते हैं। लेकिन परेशानी तब होती ह, जब डेडलाइन या दूसरी वजह से पत्रकार अपनी सीमा लांघ जाते हैं। इस संबंध में बेहद रोचक उदाहरण देते हुए क्राइम रिपोर्टर संजीव चौहान कहते हैं, ''टेलीविजन कार्यक्रम खौफ़ की शूटिंग के दौरान हमें एक लाश को लड़की द्वारा खाए जाने का दृश्य शूट करना था। घटनास्थल पर कोई कलाकार नहीं मिला तो हमने गांव की एक लड़की को इस बात के लिए राजी कर लिया। पसी के लालच में उसने काम कर दिया। हमने उसे एक शव (अवास्तविक) के पास बठाकर शूटिंग कर ली। लेकिन, जब एपिसोड टीवी पर प्रसारित हुआ तो बवाल मच गया। वो लड़की ब्राह्मण थी और उसके परिवार में किसी ने कभी माँस तक नहीं खाया था। ऐसे में जब उसे कथित तौर पर शव खाते हुए दिखाया गया तो पूरे समाज में उसे व परिवार को कई दिनों तक सफाई देनी पड़ी।''

4-सनसनीखेज भाषा : यह मान लिया गया ह कि अपराध किसी भी तरह का हो, उसमें सनसनी का तत्व मिश्रित ह यही वजह ह कि क्राइम कार्यक्रमों की भाषा बहुत हद तक सनसनीखेज रखी जाती ह

5-वीडियो संपादन : क्राइम शो को असरदार बनाने में वीडियो एडिटिंग की अहम भूमिका होती ह क्राइम शो की अधिकांश खबरें बिना स्पेशल इफेक्ट के पूरा नहीं होती। दरअसल, स्क्रिप्ट में लिखे कुछ वजनदार शब्दों का दर्शकों में असर पदा करने के लिए संपादन में कुछ खास बातों का ख्याल रखा जाता ह उदाहरण के लिए बक ग्राउंड म्यूजिक।

6-एंकरिंग : क्राइम शो की एंकरिंग को लीक से हटकर कराने के प्रयोग सफल हुए तो मान लिया गया कि अपराध कार्यक्रमों की एंकरिंग अलग अंदाज में होनी चाहिए। सुहल इलियासी से लेकर शम्स ताहिर खान और श्रीवर्धन त्रिवेदी जस एंकर अपराध कार्यक्रमों की एंकरिंग करके ही लोकप्रिय हुए।

****

9.11 सारांश

भारत में अपराध की बढ़ती दर के बीच अपराध से जुड़ी ख़बरें पाठक और दर्शकों को दैनिक खुराक में शामिल हो गई हैं। एक दौर में अपराध से जुड़े समाचारों को समाचार पत्रों में जगह मिलना मुश्किल होता था, लेकिन आज अख़बारों की मुख्य खबर से लेकर टेलीविजन पर आधे घंटे तक कार्यक्रम अपराध संबंधी ख़बर पर केंद्रित हो सकता है। अखबार और टेलीविजन पर अपराध संबंधी ख़बरों को इतनी प्रमुखता मिलने लगी हैं कि अपराध पत्रिकाएं हाशिए पर चली गई हैं। उपग्रह समाचार चैनलों के आगमन और विस्तार ने अपराध संबंधी ख़बरों के लिए खासा 'स्पेस' बनाया और एक के बाद एक कई क्राइम शो टेलीविजन पर दिखने लगे। यूं क्राइम शो का बड़ा मकसद लोगों को सचेत करना और अपराध संबंधी प्रवृत्ति और तरीकों का पर्दाफाश करना है, लेकिन सनसनीखेज और नाटकीय बनाने की दौड़ में कुछ कार्यक्रम अपने मकसद से भटक गए दिखते हैं। टीआरपी पाने की चाहत में कुछ चैनलों पर तो क्राइम रिपोर्टिंग का स्तर बहुत नीचा हो गया है। भाषा और प्रस्तुतिकरण के लिहाज से कई बार लगता है कि 'क्राइम शो' का मकसद लोगों को सचेत करना कम, डराना अधिक होता है।

निश्चित रुप से इस वक्त जिस तरह नए नए किस्म के अपराध हो रहे हैं, उसमें अपराध संबंधी कार्यक्रमों और ख़बरों के प्रति उत्सुकता बढ़ना तय है। इनकी आवश्यकता भी बहुत है। तकनीक ने अपराध को परंपरागत शैली से बाहर निकाल दिया है। मीडिया के सामने आज बड़ी चुनौती यही है कि वो कैसे अपराध संबंधी ख़बरों को पर्याप्त जगह देते हुए लोगों को सचेत करे अलबत्ता मीडिया ट्रायल जैसी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाए। अपराध की ख़बरों को अब नजरअंदाज नहीं किया जा सकता लेकिन मीडिया को इन ख़बरों को नाटकीय और सनसनीखेज बनाने की प्रवृत्ति पर रोक लगानी होगी। अपराध समाज का संवेदनशील मसला है, लिहाजा मीडिया को अतिरिक्त सावधानी बरतने की जरुरत है। अपराध की ख़बरों के प्रकाशन-प्रसारण के दौरान तेज़ी से ख़बर दिखाने की आपाधापी अथवा रोचक बनाने के प्रयत्न में हुई छूटी सी चूक कई लोगों का जीवन प्रभावित कर

सकती ह मीडियाकर्मियों को यह बात समझनी होगी। यह काम कानून के बजाय सेल्फ रेगुलेशन से हो तो बेहतर ह

9.12 शब्दावली

अपराध- अपराध कानूनी तौर पर वर्जित और साभिप्राय कार्य ह, जिसका सामाजिक हितों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता ह, जिसका अपराधिक उद्देश्य ह और जिसके लिए कानूनी तौर से दण्ड निर्धारित ह

माफिया- संगठित अपराधों के पीछे अपराधियों का बड़ा समूह काम करता ह इनका कार्यक्षेत्र भी अपेक्षाकृत विस्तृत होता ह और इनके पास संसाधन अधिक होते हैं। संगठित अपराध को अंजाम देने वाले अपराधियों को 'माफिया' भी कहा जाता ह मूं माफिया इटली के सिसिली के अपराधी तत्व थे, जिनकी अपने क्षेत्र में तूती बोलती थी। भारत में माफिया या संगठित अपराध की शुरुआत मुंबई से मानी जाती ह

9.13 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न-1 भारत में अपराध के नए तरीकों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न-2 माफिया शब्द कहां से पद हुआ, समझाकर लिखें।

प्रश्न-3 अपराध पत्रकारिता के समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहे हैं। उदाहरण देकर लिखें।

प्रश्न-4 क्राइम शो के निर्माण की प्रक्रिया समझाइए।

9.14 संदर्भ ग्रंथ

1-न्यूज चैनलों का सत्कथाकरण, फलोशिफ प्रोजेक्ट, सीएसडीएस, पीयूष पांडे

2-अपराध और टेलीविजन पत्रकारिता, वर्तिका नंदा

3-क्राइम रिपोर्टर कैसे बनें, एमके मजूमदार

4-अपराध तंत्र, विकीपीडिया

5-presscouncil.nic.in/speechpdf/Media%20Workshop%

20on%20crime%20judicial%20reporting.pdf

6-www.scribd.com/doc/53882809/Crime-Reporting-in-India

7-www.bhaskar.com/article/MH-this-man-was-the-first-stone-of-the-

foundation-of-mumbai-underworld-2707789.html

8-समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम

9-neerajtomer.blogspot.in

10-सामाजिक समस्याएं, श्री राम आहूजा

ईकाई-10

मीडिया और उपभोक्तावाद

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 उपभोक्तावाद

10.3.1 उपभोक्तावाद की परिभाषा

10.3.2 क्रेता और विक्रेता के अधिकार

10.4 उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास

10.5 उपभोक्ता संरक्षण कानून

10.5.1 क्रेता के हित के कुछ कानून

10.5.2 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1967

10.6 विज्ञापन और उपभोक्ता

10.6.1 विज्ञापनों के लिए संहिता

10.7 उपभोक्ता संगठनों की भूमिका

10.8 संचार माध्यमों की भूमिका

10.8.1 समाचार माध्यमों पर उपभोक्तावाद का असर

10.9 सारांश

10.10 बोध प्रश्न और उत्तर

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद-

- आप बता सकेंगे कि उपभोक्तावाद क्या ह□
- भारत में उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास किस तरह से हुआ और इसकी क्या दिशा ह□
- उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित अन्मान्य कानून क्या हैं
- उपभोक्ता संरक्षण कानून 1986 की गहन जानकारी
- उपभोक्ता वस्तुओं के प्रसार के विज्ञापनों की क्या भूमिका ह□
- किस तरह समाचार माध्यम उपभोक्ता वस्तु का रूप ले रहे हैं
- उपभोक्ता के अधिकारों की रक्षा में समाचार माध्यमों की क्या भूमिका ह□

10.2 प्रस्तावना

इस खंड के पूर्व यूनिटों में हमने देखा कि मीडिया ने स्त्रियों और पर्यावरण से संबंधित मुददों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करने में किस तरह की भूमिका निभाई ह□इन क्षेत्रों में समाज के भीतर जागरूकता लाने में मीडिया की क्या ताकत ह,□इसका भी हमें पता चलता ह□हमने स्त्रियों और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों की रिपोर्टिंग कैसे हो रही ह,□इसकी भी जानकारी दी ह□ इस यूनिट में हम भारत में उपनिवेशवाद की स्थिति का जायजा लेंगे। उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास के अध्ययन के साथ ही उपभोक्ता से जुड़े कानूनों की जानकारी भी प्रस्तुत करेंगे, और तब उपभोक्ताओं को जागरूक करने में मीडिया की क्या भूमिका हो सकती ह,□इसकी भी चर्चा करेंगे।

10.3 उपभोक्तावाद

उपभोक्तावाद आज के समाज में एक अत्यंत प्रचलित शब्द ह□यह उपभोक्ता से बना ह,□और उपभोक्ता के भीतर भी असली शब्द ह□भोक्ता। अर्थात उप और भोक्ता को मिलाकर उपभोक्ता बना।

उपभोक्ता का मतलब है वह व्यक्ति जो किसी भी सेवा या वस्तु का उपभोग करता है या इस्तेमाल करता है। आप किसी भी ऐसी सेवा चीज या सेवा के उपभोक्ता हैं जिसे आप मूल्य चुका रहे हैं। यानी किसी भी वस्तु या सेवा के लिए जब आप मूल्य चुकाते हैं तो आप क्रेता यानी खरीदार हुए और जिससे खरीदते हैं वह विक्रेता हुआ। जो वस्तु आप मूल्य देकर खरीद रहे हैं, आपकी स्वाभाविक इच्छा होगी कि वह उतनी रकम के लायक हो। यदि आपको वह वस्तु घटिया लगती है या आपके द्वारा चुकाई गई रकम के हिसाब से कमतर निकलती है तो आपको लगता है कि आपके साथ धोखा हुआ है। आप छले गए हैं। ऐसी स्थिति में यह आपका अधिकार बनता है कि आप अपनी रकम वापस लें। लेकिन क्या विक्रेता आपको रकम वापस देगा। शायद 'नहीं'। दरअसल 'नहीं' की इस स्थिति में ही उपभोक्तावाद की गुत्थी निहित है। अमेरिका में 1938 में प्रकाशित 'कंज्यूमर्स रिसर्च' पत्रिका के मुताबिक, 'उपभोक्ता वह है जो अपने, अपने परिवार के उपभोग के लिए वस्तुएं खरीदता है। वह एक ही तरह की अनेक वस्तुओं व सेवाओं की तुलना करता है और सबसे कम कीमत में सबसे अच्छी चीज खरीदता है। केवल अमीर होना ही उपभोक्ता होने की शर्त नहीं है। असली बात यह है कि आपके भीतर उपभोक्ता होने की चेतना है या नहीं।' यदि कोई विक्रेता बहुत ही ईमानदार हुआ तो खराब निकली वस्तु की रकम लौटाएगा, वरना बोल देगा, नहीं। यदि समाज में इसके लिए कानून होगा तो निश्चय ही विक्रेता को वह मूल्य लौटाना होगा या बराबर मूल्य की नई चीज देनी होगी।

क्रेता या उपभोक्ता के हितों की रक्षा का नाम ही वास्तव में उपभोक्तावाद है। आधुनिक समाजों में सरकार कानून बनाकर उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करती है। समाज में उपभोक्ता अधिकारों के प्रति समर्पित लोग उपभोक्ता संगठन बना सकते हैं ताकि उपभोक्ता हितों की रक्षा की लड़ाई मिलकर लड़ी जाए। आप एक नन्ही सी सुई लेते हैं, जिसमें छेद नहीं है, पिन लेते हैं, जिसमें जंग लगी है, माचिस की डिबिया लेते हैं जिसकी तीलियां नहीं जलतीं। देखने में ये बेहद छोटी चीजें हैं, और मूल्य भी हम बहुत ज्यादा नहीं चुकाते। लेकिन विक्रेता तो बहुत मुनाफा कमाता है। क्या इसमे हमारे हितों का प्रश्न नहीं है। चूंकि सुई जैसी मामूली वस्तु के लिए हम कोर्ट-कचहरी नहीं जाएंगे, शायद हमारी इसी कमजोरी का फायदा उठाकर उत्पादक घटिया माल का उत्पादन करते रह सकता है। आपका यह अधिकार बनता है कि मूल्य चुका कर ली गई वस्तु स्तरीय हो। सरकार को चाहिए कि उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए उचित कानून बनाए। कानून को क्रियान्वित करने के लिए

पर्याप्त न्यायिक मशीनरी खड़ी करे। स्वयंसेवी संस्थाओं की मदद से जन आकांक्षाओं की पूर्ति करवाए। जनता को भी इस सिलसिले में निरंतर जागरूक रहने की जरूरत है। वह संगठन बनाकर आंदोलन चला सकती है। तभी उपभोक्तावाद की लड़ाई को मिल कर लड़ा जा सकता है।

10.3.1 उपभोक्तावाद की परिभाषा

इस प्रकार उपभोक्तावाद संजीदा नागरिकों और सरकार का वह संगठित आंदोलन है। जो विक्रेताओं की तुलना में क्रेताओं के अधिकारों और शक्तियों को परिभाषित करता है। और उनकी रक्षा करता है। महात्मा गांधी ने विक्रेताओं अर्थात व्यापारियों को संबोधित करते हुए कहा था- 'हमारी दुकान पर आने वाला सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति ग्राहक ही है। वह हम पर निर्भर नहीं है। बल्कि हम उस पर निर्भर हैं। वह हमारे काम में किसी तरह का व्यावधान डालने नहीं आता, बल्कि हमारी उपस्थिति का लक्ष्य ही वही होता है। वह हमारे व्यापार का अनिवार्य हिस्सा है। हम उसकी सेवा करके उस पर कोई रहम नहीं कर रहे, बल्कि सेवा का मौका देकर वह हमें उपकृत कर रहा है।' जब गांधी जी ने यह बात कही थी तब भारत में उपभोक्तावाद का कहीं नाम तक नहीं था। लेकिन समाज के भीतर एक छिपा उपभोक्तावाद था जो हमारी नैतिकता में निहित था। व्यापारियों के लिए गांधी जी के ये शब्द उसी नैतिकता की देन हैं। आज हमारा उपभोक्तावाद व्यापारियों या उत्पादकों की नैतिकता पर आधारित नहीं है। बल्कि उसे कानूनी प्रावधानों की ठोस जमीन उपलब्ध है।

10.3.2 क्रेताओं और विक्रेता के अधिकार

क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच एक अपरिहार्य रिश्ता होता है। दोनों के बीच कुछ उसूल होते हैं और कुछ छिपा हुए कानून, जिनके तहत वे आपस में लेन-देन करते हैं। पारंपरिक तौर पर यह रिश्ता विक्रेता के पक्ष में झुका हुआ था। लेकिन अब बढ़ती उपभोक्ता- जागरूकता और कानूनों के बन जाने से यह रिश्ता संतुलन की स्थिति में आ गया है। हालांकि कस्बाई व ग्रामीण बाजारों में आज भी स्थिति में बहुत सुधार नहीं आ पाया है, इसलिए आज भी वहां विक्रेता अपनी मनमर्जी कर लेता है। यहां हम क्रेताओं व विक्रेताओं के अधिकारों की एक झलक प्रस्तुत कर रहे हैं-

विक्रेताओं के पारम्परिक अधिकार- विक्रेता या उत्पादक किसी भी वस्तु या सेवा को विक्रय के लिए पेश कर सकता है, उसका कोई भी आकार-प्रकार, तरीका हो सकता है। बशर्ते कि वह चीज

किसी के स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए हानिकारक न हो। यदि किसी तरह के नुकसान या जोखिम की आशंका हो तो इसके लिए वह उचित चेतावनी दे सकता ह इससे संबंधित चिन्ह बना सकता ह

- वह अपने पूरे माल की कीमत निर्धारित कर सकता ह बशर्ते कि इसमें वह किसी तरह का भेदभाव न रखे।
- अपने माल को प्रचारित करने के लिए वह किसी भी हद तक रकम खर्च कर सकता ह बशर्ते कि इससे कोई गलत प्रतिस्पर्धा न पद्दा हो।
- अपने ग्राहकों के लिए वह कोई भी प्रोत्साहन योजना शुरू कर सकता ह अपने माल पर कोई भी संदेश या जानकारी छाप सकता ह, लेकिन यह भ्रामक न हो और अंदर की सामग्री से मेल खाता हो

क्रेताओं के पारम्परिक आधार

- बिक्री के लिए पेश किसी भी वस्तु को खरीद सकता ह
- बिक्री गए माल के प्रति वह यह अपेक्षा रख सकता ह कि वह साफ-सुथरा व सुरक्षित हो।
- खरीद गए माल के प्रति वह यह अपेक्षा रख सकता ह कि वह साफ-सुथरा व सुरक्षित हो।
- वह यह भी अपेक्षा रख सकता ह कि जो माल वह खरीद रहा ह, उसमें निर्दिष्ट वस्तु ही अंदर होगी।

क्रेता व विक्रेता के पारम्परिक अधिकारों की तुलना करके देखें तो आम तौर पर यह तराजू विक्रेता की तरफ झुका होता ह यानी बिके हुए माल को वापस न लेने के लिए विक्रेता के पास अनेक बहाने होते हैं, जबकि क्रेता कुछ अपनी काहिली के कारण और कुछ जानकारी के अभाव के कारण अपने अधिकारों का इस्तेमाल ही नहीं कर पाता ह वस्तु के बारे में जो जानकारी विक्रेता की तरफ से दी जाती ह वह भी न सिर्फ अक्सर आधी अधूरी होती ह, बल्कि भ्रामक और कई बार झूठी भी होती ह, इसलिए उपभोक्ता आंदोलन से जुड़े कार्यकर्ताओं का मानना ह कि उपभोक्ताओं को कुछ और अधिकार मिलने चाहिए। मसलन-

- वस्तु के बारे में विस्तार से जानने का अधिकार
- संदिग्ध वस्तुओं और संदिग्ध विणन व्यवहार के विरुद्ध शंका जाहिर करने का अधिकार
- उपभोक्ता को यह सलाह देने का अधिकार भी मिलना चाहिए कि जिससे माल की गुणवत्ता सुधरे और उपभोक्ता को माल की वास्तविक लागत जानने का भी अधिकार होना चाहिए। वस्तु किन किन

चीजों से बनी ह, उनके अलग-अलग फायदे क्या हैं और उनकी पौष्टिकता क्या ह, इसकी भी पूरी जानकारी ग्राहक को वस्तु के साथ ही उपलब्ध कराई जाए। यही नहीं, अब यह मांग भी जोर पकड़ती जा रही ह कि वस्तु के विज्ञापन में ही ठीक जानकारी दी जाए, विज्ञापन और वस्तु में किसी तरह का अंतर न हो। विकसित देशों में तो अब लोग पर्यावरणीय दृष्टिकोण से उपयोगी वस्तुओं के प्रति भी सतर्क रहने लगे हैं। यानी पर्यावरणीय पहलू से निरापद वस्तु का लेबल चिपका होना भी अब एक जरूरी शर्त बन गया ह। भारत में भी पर्यावरण को लेकर आंदोलन चलने लगे हैं। खादी ग्रामोद्योग से बिकने वाले कागज पर लिखा रहता ह कि यह कागज रीसाइकल करके या हाथ से बना ह, अर्थात इसे बनाने में लकड़ी का इस्तेमाल नहीं हुआ ह।

10.4 उपभोक्तावाद की उत्पत्ति और विकास

उपभोक्तावाद का वर्तमान स्वरूप हमारे यहां पश्चिम से आया ह। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रांति के बाद जब विकास होने लगा तब उपभोक्तावाद का जन्म हुआ। वहां जब उत्पादन बढ़ने लगा और उसके वितरण से समृद्धि बढ़ने लगी तो लोगों में माल की गुणवत्ता के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी। उत्पादन बढ़ा तो वस्तुओं के बीच प्रतिस्पर्धा भी बढ़ने लगी। इसलिए एकतरफ लोगों में खरीदे गए माल के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा पद हुई ताकि प्रतिस्पर्धा में दूसरे माल से तुलना की जा सके। साथ ही उपभोक्ताओं को इकट्ठा करके उत्पादकों पर दबाव बनाने की रणनीति के तहत भी उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला। अमेरिका में बीसवीं सदी के आरम्भ में इसकी उत्पत्ति हो गई थी, लेकिन आधुनिक उपभोक्तावाद की शुरुआत 1960 के आसपास 'राल्फ नाडार' से हुई,जिन्होंने इसे कानूनी आंदोलन का रूप दिया।

पश्चिम में उपभोक्ता आंदोलन के बढ़ने से वस्तुओं की गुणवत्ता, उत्पादकों द्वारा अपने माल को लेकर किए जाने वाले दावों के बारे में बड़ी जागरूकता आई। धीरे धीरे उपभोक्ता यह मांग करने लगे कि खरीदी गई वस्तु के बारे में ठीक-ठीक जानकारियां दी जाएं। अमेरिका में राल्फ नाडार को आधुनिक उपभोक्तावादी आंदोलन का अगुवा माना जाता ह। उन्होंने बहुत-सी कंपनियां को लाइन हाजिर कर दिया था। तब जाकर उत्पादकों ने अपनी मनमानी हरकतें छोड़नी शुरू की। उन्होंने जनरल मोटर्स जसी बड़ी मल्टीनेशनल कम्पनियों से लेकर स्वास्थ्य, वृद्धावस्था की देखभाल से संबंधित वस्तुओं

व सेवाओं, एटामिक एनर्जी, जल व वायु प्रदूषण जैसे मुद्दे उठाए और अमेरिकी समाज में एक नए युग की शुरुआत की। नाडार मानते हैं कि नागरिक होने का भाव गायब है, सार्वजनिक हितों के बारे में कोई सोचता ही नहीं। वास्तव में यदि इस तरह की संस्थाएं न हों तो निजी कंपनियां तो बेलगाम घोड़े की तरह नागरिकों को रौंदती ही चली जाएंगी। इस तरह लोकतंत्र की एक जरूरी शर्त के रूप में उपभोक्तावादी आंदोलन उभरा है।

भारत में आंदोलन

भारत में उपभोक्तावादी आंदोलन के उभरने का कारण पश्चिमी देशों से भिन्न है। भारत में आवश्यकता उपभोक्ता सामग्री की किल्लत, मिलावट जैसी बीमारियों से निपटने के लिए उपभोक्तावाद ने जन्म लिया। 1973-74 में जब आवश्यक वस्तुओं की किल्लत होने लगी तो लोगों ने देखा कि बाजार में कालाबाजारी हो रही है, कृत्रिम किल्लत दिखाई जा रही है, व्यापारी जमाखोरी करने लगे हैं और जो सामान मिल रहा है, उसमें भी मिलावट है। 1975 में जब देश में आपातकाल लगा तो बड़ी संख्या में कालाबाजारियों की धड़पकड़ होने लगी। दुकानों में स्टाक और मूल्य सूची टंगने लगीं। विज्ञापन का प्रसार हुआ। नई टेक्नोलॉजी आई। बाजार नए-नए माल से पटने लगे, लेकिन विज्ञापन में जो दावे किए जाते वे खोखले निकलते। स्तर के हिसाब से माल खराब होता था। एक तरह से यह विक्रेता की दादागीरी थी,जिससे उपभोक्ताओं में संगठन की जरूरत महसूस हुई। मसलन एक स्कूटर लेने के लिए भी उपभोक्ता को बरसों पहले बुकिंग करवा कर रखनी पड़ती थी। या फिर ब्लैक में लेना पड़ता था। जबकि पश्चिमी देशों के उपभोक्ता उतने ही मूल्य में बेहतर और ज्यादा सामग्री का उपभोग कर रहे थे। इसकी एक वजह संरक्षित अर्थव्यवस्था भी था। इस प्रकार भारत में उपभोक्ता आंदोलन का जन्म आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि, शुद्धता और कीमत नियंत्रण को लेकर हुआ। चूंकि भारत में लगभग 35 करोड़ का मध्यवर्ग है, जो अपनी आय के प्रति बेहद सचेत रहता है, इसलिए उपभोक्ता आंदोलन का महत्व बढ़ने लगा।

10.5 उपभोक्ता संरक्षण कानून

क्रेता और विक्रेता के बीच संतुलन बनाए रखने के मकसद से समय-समय पर कानून बनाए गए हैं। आरंभिक कानूनों में हांलाकि उपभोक्ता के अधिकारों के संरक्षण के प्रति भावना नहीं थी, जैसी कि आज है। ये कानून निम्नवत हैं-

10.5.1 उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित विभिन्न कानून

उपभोक्ता संरक्षण और उपभोक्ता अधिकारों से संबंधित कानूनों की एक झलक यहां प्रस्तुत ह□

1- कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर के तहत उपभोक्ता संरक्षण

2- माल विक्रय अधिनियम-1930

3- कृषि उपज 'श्रेणीकरण एवं चिन्हांकन' अधिनियम-1954

4- औषधि और चमत्कारिक उपचार 'आपेक्षणीय विज्ञापन' अधिनियम- 1954

5- खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम-1954

6- आवश्यक वस्तु अधिनियम-1955

7- सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम-1955

8- व्यापार एवं वस्तु चिन्ह अधिनियम-1958

9- निर्यात 'क्वालिटी नियंत्रण और निरीक्षण अधिनियम- 1974

10- कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर 1973 के तहत उपभोक्ता संरक्षण

11- जल 'प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण' अधिनियम- 1971

12- बाट और माप मानक अधिनियम -1976

13- चोर बाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अधिनियम- 1970

14- वायु 'प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण' अधिनियम-1961

15- भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम- 1976

16- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम- 1976

17- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम- 1986

अंतिम अधिनियम को छोड़कर बाकी सभी कानून विशिष्ट परिस्थितियों में ही लागू होते हैं। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 एक ऐसा अधिनियम ह जो विभिन्न परिस्थितियों में उपभोक्ता संरक्षण की चर्चा करता ह हम यहां इस अधिनियम की विस्तार से चर्चा करेंगे।

10.5.2 **उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम-** 1986

भारत में जब उपभोक्ता आंदोलन काफी जोर पकड़ने लगा और कानून कमजोर पड़ने लगे तो यह जरूरत महसूस हुई कि कोई एक कानून ऐसा बने, जो एक साथ विभिन्न प्रकार की समस्याओं से निबटने में सहायक सिद्ध हो। यह हर तरह की वस्तुओं और सेवाओं पर समान रूप से लागू होता ह, बशर्ते कि किसी वस्तु को केंद्र सरकार की तरफ से कानून की परिधि से बाहर न रखा गया हो।

इस कानून के तहत उपभोक्ता को निम्न अधिकार प्राप्त हैं-

क- जीवन और संपत्ति के लिए हानिकारक वस्तुओं से बचाने का अधिकार।

ख- वस्तुओं की क्वालिटी, मात्रा, शक्ति, शुद्धता, मानक और कीमत जानने का अधिकार ताकि अवध आधार व्यवहार से खुछ को बचाया जा सके।

ग- उपभोक्ता हितों को लेकर सहानुभूतिपर्ण तरीके से विचार के लिए उचित मंच पर याचना करने का अधिकार।

घ- प्रतिस्पर्धात्मक कीमतों पर विविध वस्तुओं तक यथासंभव पहुंच प्राप्त करने का अधिकार।

च- अनुचित व्यापार, व्यवहार से खुद को बचाया जा सके।

छ- उपभोक्ता शिक्षण का अधिकार

अनुचित व्यापार व्यवहार

मोटे तौर पर *'अनुचित व्यापार व्यवहार'* का संबंध निम्न गतिविधियों से ह

- कोई भी भ्रामक विज्ञापन या झूठा प्रतिनिधित्व
- सौदेबाजी पर आधारित बिक्री
- किसी चीज की बिक्री
- किसी चीज की बिक्री के लिए लालच देना
- किए गए वायदों को निभाय बिना उपहारों व पुरस्कारों की घोषणा
- कुछ अपवादों को छोड़कर व्यापार बढ़ाने के लिए अनुचित तरीके से प्रतियोगिताएं करवाना
- निर्दिष्ट मानकों पर खरे उतरने वाली वस्तुओं की आपूर्ति
- वस्तुओं को जमाखोरी या नष्ट करना
- वस्तुओं को बेचने से इनकार करना

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम व्यापक ह और यह विभिन्न परिस्थितियों में उपभोक्ता की शिकायतों का निपटान करने में सक्षम ह यह उपभोक्ता अधिकारों और संरक्षण के तरीकों पर विस्तार से प्रकाश डालता ह लेकिन आज हमारे उपभोक्ता कार्यकर्ता कहते हैं कि जिस तरह से अनुचित व्यापार, व्यवहार बढ़ रहा ह और जिस पमाि पर समाज में उपभोक्तावाद फल रहा ह उसके चलते यह कानून भी अपर्याप्त हो गया ह

इंद्र कुमार गुजराल जब प्रधानमंत्री थे, तब एक सभा में उन्होंने कहा था कि *वर्तमान उपभोक्ता कानून उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। बेशक कई मामलों में अच्छे फैसले हुए हैं, फिर भी उपभोक्ताओं को अभी और जागरूक बनाए जाने की जरूरत है।*

दरअसल इस कानून की अपर्याप्तता के पीछ इसके प्रावधानों की कमी नहीं, इसके कार्यान्वयन में आई ढील ह इसके तहत उपभोक्ताओं की शिकायतों के निपटारे के लिए त्रिस्तरीय तंत्र बनाया गया। जिला स्तरीय मामलों मामलों में 5 लाख रुपए तक के मुआवजों के लिए डिस्ट्रिक्ट फोरम 20 लाख रुपए तक के मुआवजों के लिए स्टेट कमीशन और 20 लाख से अधिक राशि के मुआवजे के मामले में नेशनल कमीशन का प्रावधान रखा गया था। और किसी भी स्तर पर 90 दिन के भीतर मामले को निपटाने का संकल्प लिया गया था। लेकिन इन फोरमों ने भी मामलों की भीड़ बढ़ने लगी ह 1996 के अंत तक जिला व राज्य स्तरीय फोरमों से साढ़े तेरह लाख मामले सुनवाई के लिए पंजीकृत हो गए थे, इससे पता चलता ह कि अपने यहां किस पमाि पर अनुचित व्यापार

व्यवहार होता है लेकिन 1998 के अंत तक 10 लाख मामलों का ही निपटान हो पाया था। उपभोक्ता तब परेशान हो उठता है जब उसे उपभोक्ता न्यायालय से भी लंबी लंबी तारीखें मिलती हैं। राष्ट्रीय उपभोक्ता शिकायत निवारण आयोग के पास 1998 के अंत तक 14,500 मामले आए थे जिनमें से 6,000 मामले अनसुलझे पड़े हैं। इनमें से कुछ मामले तो 1992 से ही पड़े हुए हैं। एचडी शौरी जैसे प्रख्यात उपभोक्ता कार्यकर्ता, आज जिस तरह से उपभोक्ता आंदोलन ढीला पड़ रहा है, उससे निराश हैं। उनका कहना है कि कानून बनाने में तो हम अग्रणी हैं पर इसे लागू करवाने में हम पिछड़ रहे हैं। अस्सी के दशक में इस आंदोलन में जो तेजी आई थी, वह अब ढीली पड़ गई है। यह वाकई हमारे लोकतंत्र के लिए नुकसानदेह हैं।

10.6 विज्ञापन और उपभोक्ता

जैसे जैसे समाज में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है, विज्ञापनों का महत्व भी बढ़ा है और विज्ञापनों के बढ़ने से समाचार पत्र-पत्रिकाओं या इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की आय भी बढी जिससे अखबारों का आकार बढा, टीवी चैनलों का समय बढा। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि बिना विज्ञापनों के कोई चैनल 24 घंटे चल सकता है?

एक अखबार की लागत 20 रुपए के लगभग आती है जबकि वह बिकता है एक या दो रुपए में, यानी अखबारों या टीवी या रेडियो की सेहत के लिए विज्ञापनों का होना बहुत आवश्यक है। दूसरी ओर उपभोक्ता के लिए विज्ञापन बेहद जरूरी हैं। उपभोक्ता विज्ञापन पढ़ कर उत्पाद के बारे में न सिर्फ प्राथमिक जानकारी प्राप्त करता है बल्कि कई तरह के कई उत्पादों के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी करता है। उसे वस्तु की कीमत, उसकी गुणवत्ता और उपलब्धता की जानकारी विज्ञापनों से ही मिलती है। आज ग्राहक उत्पाद के बीच की परिहार्य कड़ी बन गया है विज्ञापन। बिना विज्ञापन के उपभोक्ता बाजार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज हर कंपनी के पास विज्ञापन का अलग बजट रहता है। बिना विज्ञापन के कोई कंपनी अपने माल को बाजार में उतारने की हिम्मत भी नहीं कर सकती।

यहां पर प्रश्न भी उठता है कि झूठे व भ्रामक विज्ञापनों की पहचान कैसे हो। कोई उत्पादन यदि अपने उत्पाद के बारे में अतिरंजित जानकारी देता है, वास्तविक खरीद के समय ग्राहक को

लगता है कि विज्ञापित माल और बेचे जा रहे माल में जमीन आसमान का अंतर है तो वह छला सा महसूस करता है। यहां पर विज्ञापन का माध्यम बनने वाले मीडिया की भूमिका पर सवाल उठता है कि क्या मीडिया का विज्ञापनों पर, विज्ञापनदाताओं पर कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए, क्या मीडिया को अपने मुनाफे के लिए मर्जी से विज्ञापन को छाप देना चाहिए, ऐसा हो सकता है और कई बार होता भी है। इसलिए यहां मीडिया की भूमिका पर अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। साथ ही उपभोक्ता कार्यकर्ताओं को भी निरंतर सचेत रहने की जरूरत होती है। मीडिया जगत ने इसीलिए एक संहिता बनाई है जो खुद उन पर लागू होती है, कि हमें कैसे विज्ञापन छापने चाहिए कैसे नहीं? विज्ञापन छापने से पहले किन बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी होता है? लेकिन विदेशी टीवी चैनलों से प्रसारित होने वाले विज्ञापनों पर रोक लगाने के लिए हमारे पास जो कानून है, वह बहुत ढीला-ढाला है। यह भी सवाल उठता है कि अंतरराष्ट्रीय चैनलों पर विज्ञापित वस्तुएं भी अमूमन विदेशी होती हैं। विज्ञापन हमारे दर्शकों में उन चीजों को पाने की भूख जगाते हैं, इसलिए विज्ञापनों की दुनिया भी एक जटिल युग में प्रवेश कर रही है, और यह अपेक्षा है कि इस समस्या से निबटने के लिए हमें गंभीर प्रयास करने होंगे।

10.6.1 विज्ञापनों के लिए संहिता

विज्ञापन की दुनिया में आत्म नियमन के लिए संहिता की जरूरत बड़े दिनों से महसूस की जा रही थी। दिसंबर 1973 में विज्ञापनदाताओं और विज्ञापन एजेंसियों ने मिलकर एक संस्था बनाई-भारतीय विज्ञापन मानक परिषद। लेकिन इस संस्था के पास अभी कोई कानूनी अधिकार नहीं हैं। फिर भी आत्म नियमन की दृष्टि से ही सही, यह एक अच्छा प्रयास था। इसने कहा कि विज्ञापन ईमानदार, सत्य, निष्पक्ष और जिम्मेदार हो। साथ ही किसी के खिलाफ नाहक दुष्प्रचार न करते हों। परिषद ने जो संहिता बनाई, उसके मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं-

- विज्ञापनों के जरिए उत्पादनों या सेवाओं के बारे में जो भी दावे किए जाते हैं, वे सत्याग्रहों, ईमानदारीपूर्ण हों। इसके अलावा परिषद को भ्रामक विज्ञापनों के खिलाफ कार्रवाई करने का भी अधिकार हो।

- प्रतिस्पर्धा में विज्ञापनकर्ता निष्पक्षता सुनिश्चित करें ताकि उपभोक्ता के चयन के अधिकार हनन न हो। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा तो ठीक ह, लेकिन किसी के विरुद्ध अनावश्यक प्रचार की इजाजत नहीं दी जा सकती।
- समाज के लिए नुकसानदेह उत्पादों के प्रचार से विज्ञापनों को दूर रखा जाएगा।
- परिषद यह सुनिश्चिचत करेगी कि विज्ञापन सामाजिक शालीनता के स्वीकार्य मानदंडों को हानि नहीं पहुंचाएंगे।

10.7 उपभोक्ता सं ठनों की भूमिका

उपभोक्ता के साथ-साथ एक शब्द ह भोगवाद। इन दोनों के बीच हल्का-सा फर्क ह जहां उपभोक्ता अपनी जरूरतों, खरीदी जाने वाली वस्तु के मूल्य व गुणवत्ता को लेकर अत्यंत सचेत होता ह, वहीं भोगी अंधाधुंध भोग विलास पर विश्वास करता ह जरूरत न होने पर भी वह उत्पादनों को खरीदता ह इस तरह जहां उपभोग की नकारात्मक प्रवृत्ति का प्रतिफल भोगवाद ह, वहीं उपभोग की सकारात्मक प्रवृत्ति उपभोक्तावाद ह उपभोक्तावाद भोगवाद में न बदल जाए इसके लिए जरूरी ह कि उपभोक्ताओं का निरंतर मार्ग दर्शन किया जाए। उपभोक्ता वस्तुओं पर नियंत्रण रखा जाए, जहां सरकार के अनेक विभाग एवं एजेंसियां उपभोक्ता संबंधी कानूनों के पालन के लिए निगरानी रखती हैं, वहीं उपभोक्ताओं में जागृति लाने के काम में उपभोक्ता संगठनों, समाचार माध्यमों और स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं ह आमतौर पर उपभोक्ता संगठन तीन दिशाओं में काम करते ह

- उपभोक्ता शिक्षा
- उत्पादों की रेटिंग (श्रेणीकरण)
- उत्पादकों और सरकारी संस्थाओं के बीच समन्वय

उपभोक्ता शिक्षा :

उपभोक्ता संगठन विभिन्न प्रचार माध्यमों और स्वयं के कार्यक्रमों के जरिए उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों, उपभोक्ता संरक्षण एजेंसियों, नियमों, कानूनों के प्रति जागरूक करते हैं। यह शिक्षण

वस्तुओं के बारे में भी हो सकता ह और अधिकारों के बारे में भी। दिल्ली में 'कामन कॉज' संस्था इस दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रही ह

उत्पादों की रेटिंग :

कई देशों में कुछ उपभोक्ता संगठन उत्पादों की रेटिंग अर्थात स्तर निर्धारित करने का काम भी करते हैं। वित्तीय क्षेत्र में अपने यहां भी कुछ संस्था कंपनियों के इश्यूओं की श्रेणियां आवंटित करती हैं। एक तरह से वे उपभोक्ता का मार्गदर्शन करती हैं। अपने देश में कंज्यूमर गाइडेंस सोसायटी आफ इंडिया इस दिशा में काम कर रही ह

समन्वय:

उपभोक्ता क्षेत्र में सक्रिय संगठनों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यही ह कि वे उत्पादों की कमियों, उनके बारे में मिली शिकायतों को उनके उत्पादकों तक पहुंचाते हैं और लगातार गलत काम करने वाले उत्पादकों को उपभोक्ता न्यायालयों में तलब करते हैं।

आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के समुचित वितरण की जिम्मेदारी सरकार की ह यदि इस व्यवस्था में कहीं गड़बड़ी हो रही ह तो संगठनों, कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारी ह कि वे इस व्यवस्था को दुरूस्त करवाएं। लेकिन उपभोक्ता संगठनों को सचेत होकर यह भी देखना होता ह कि इस दायित्व का निर्वाह करते हुए वे किसी स्वार्थी गुट या राजनीति के हाथों की कठपुतली न बनें। चुनावों के वक्त ऐसा संभव ह कि किसी एक दल को बदनाम करने के लिए आवश्यक वस्तुओं की कृत्रिम किल्लत पद कर दी जाए और उपभोक्ता संगठनों का इस्तेमाल उस दल की मुखालफत करने में कर लिया जाए । उपभोक्ता संगठनों की पहली और अंतिम जिम्मेदारी उपभोक्ता हैं। जिसका ध्यान भटका, वे उपभोक्ता संगठन न रह कर स्वार्थी दलाल हो जाएंगे।

10.8 संचार माध्यमों की भूमिका

जसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, उपभोक्तावाद संरक्षण, उपभोक्तावाद के प्रसार में संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका ह न उपभोक्तावाद के बिना संचार माध्यमों का अस्तित्व ह और न

ही बिना मीडिया सहयोग के उत्पादन कर्ता अपने माल को ग्राहकों तक पहुंचाने के बारे में ही सोच सकते हैं। मीडिया की भूमिका को हम मुख्य रूप से पांच हिस्सों में बांट सकते हैं। पहला: मीडिया उपभोक्ता संरक्षण अभियान का एक प्रमुख हिस्सेदार है क्योंकि उसने न सिर्फ उपभोक्ता संरक्षण कानून और इससे संबंधित नियमों के प्रति समाज में जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, उपभोक्ता न्यायालयों के फैसलों को व्यापक रूप में प्रचारित भी कर इस अभियान को स्थापित भी किया है। दूसरा पहलू है मीडिया के जरिए नए उत्पादों, आवश्यक वस्तुओं से संबंधित सूचनाओं को प्रमुखता से छापना। आज मीडिया नए उत्पादों, आवश्यक वस्तुओं से संबंधित सूचनाओं को प्रमुखता से छापना। आज मीडिया नए उत्पादों को लेकर अत्याधिक जागरूक है। वह अपने पाठकों, दर्शकों को नई-नई चीजों की जानकारी देकर, उत्पादों की समीक्षा प्रस्तुत करके ग्राहकों का मार्गदर्शन करता है। तीसरे पहलू के तौर पर हम 'डायरेक्ट मार्केटिंग' (प्रत्यक्ष विपणन) के रूप में मीडिया के इस्तेमाल को ले सकते हैं। आज अनेक टीवी चैनलों में डायरेक्ट मार्केटिंग के कार्यक्रम दिखाए जा रहे हैं। 'स्काई शॉप' चलाई जा रही है, यानी मीडिया खुद उपभोक्ता बाजार का एक सक्रिय हिस्सेदार बन गया है। चौथा पहलू है विज्ञापन का। अर्थात विज्ञापन के जरिए उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचार। यहां उपभोक्ता, उत्पादनकर्ता के बीच समन्वय का काम करता है मीडिया। पांचवां और शायद सबसे अहम पहलू यह है कि आज मीडिया अपने आज में एक उपभोक्ता उद्योग में तब्दील हो गया है। आज पत्रकारिता मिशन नहीं रही। वह किसी भी अन्य व्यवसाय की तरह मुनाफा कमाने वाला उद्योग बन गया है। आज के पत्र स्वामी पत्रकारिता के जरिए अधिकाधिक मुनाफा कमाने चाहते हैं। वे अन्य उद्योगों की ही तरह से अपना प्रसार क्षेत्र बढ़ाने और इसके एवज में विज्ञापन की मांग बढ़ाने के लिए हरसंभव कोशिश करते हैं। दिल्ली में 'टाइम्स आफ इंडिया' ने 'आमंत्रण मूल्य'(इनविटेशन प्राइस) के जरिए जिस तरह से 25 रुपए मूल्य की लागत वाले अखबार की कीमत डेढ़ रुपए स्थिर कर रखी है, वह इसका ज्वलंत प्रमाण है। यही नहीं, अब हिन्दुस्तान टाइम्स ने इसे और भी घटाकर एक रुपए कर दिया है, जिससे टाइम्स आफ इंडिया को भी अपनी कीमत एक रुपए करनी पड़ी।

10.7.1 समाचार माध्यमों पर उपभोक्तावाद का असर

आज न सिर्फ शहरों में, बल्कि गांवों में भी उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं की खपत में जबर्दस्त उफान आया है। बहुराष्ट्रीय निगमों का अनुमान है कि भारत 25 करोड़ मध्यवर्गीय उपभोक्ताओं का

बाजार है। यह बाजार चीन के बाद दुनिया का सबसे बड़ा बाजार है। मीडिया-प्रचार के जरिए इस विशाल उपभोक्ता बाजार के अधिकाधिक दोहन पर नजरें टिकी हुई हैं। जो उछाल आया है, वह भी मीडिया के जरिए ही संभव हो पाया है। 1991 के बाद अर्थात भारत में नई आर्थिक नीति के शुरू होने के बाद ही उपभोक्ता बाजार बड़ी तेजी से फेला है। अर्थात चीजों के प्रति समाज के दृष्टिकोण में भी स्वाभाविक रूप से परिवर्तन आ रहा है। जाहिर है, ऐसी स्थिति में अखबार या टीवी चैनल दोहरी भूमिका निभाता है। एक तरफ वह स्वतः भी एक उपभोक्ता वस्तु है, दूसरी तरफ वह अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचारक भी है। ऐसी स्थिति में यह संभव है कि कोई अखबार या चैनल निहित स्वार्थों से प्ररित होकर खास उपभोक्ता वस्तुओं का प्रचार करने लग जाए। यह स्थिति निश्चय ही उस मीडिया-माध्यम की साख को खत्म कर डालेगा। इसलिए मीडिया की व्यावसायिकता यह मांग करती है कि मीडिया अत्यंत निष्पक्ष हो। जो मीडिया जितना निष्पक्ष होगा, जितना उपभोक्ता-मित्र होगा, वह उतना ही सफल होगा। इस तरह जो भूमिका उपभोक्ता कार्यकर्ताओं की है, वही मीडिया की भी है। उपभोक्ता संगठनों का लक्ष्य उपभोक्ता की सेवा है तो ये उपभोक्ता ही अखबार के पाठक -टीवी के श्रोता या दर्शक हैं। इस तरह ये उपभोक्ता संगठनों के न सिर्फ मददगार हैं बल्कि पूरक भी हैं।

मीडिया पर उपभोक्तावाद के असर ने आज अखबारों, टीवी चैनलों की तस्वीर ही बदल डाली है। मुद्रित पत्रकारिता जो आज से 20 साल पहले तक सिर्फ राजनीति या थोड़ी बहुत मानवीय सरोकारों का प्रतिनिधित्व करती थी, आज एक विशाल फलक को सामने रखकर काम कर रही है। अब पत्रकारिता का मतलब सिर्फ समाचार देना ही नहीं रह गया है, बल्कि पाठक या दर्शक की जरूरतों की अधिकतम पूर्ति करना भी उसका परम दायित्व है। इसलिए वह अब खबरों या विचारों या शिक्षक लेखों का संपुंज न रहकर एक ऐसा जादुई पिटारा बन गया है, जिसमें से पाठक अपनी जरूरत, ज्ञानवर्धन और मनोरंजन की हर सामग्री यानी सूचना निकाल सकता है। आर्थिक उदारीकरण के साथ पत्रकारिता का यह स्वरूप निश्चित आकार ग्रहण करेगा। अभी वह संक्रमण के दौर में ही है।

****

10.9 सारांश

इस तरह हम देखते हैं कि अब भारत में उपभोक्तावाद एक निश्चित आकार की ओर अग्रसर ह जहां यूरोपीय देशों में संपन्नता की वजह से उपभोक्तावाद का जन्म हुआ, वहीं भारत में यह एक जरूरत बनकर आया। इसकी वजह से सरकार चोरबाजारियों, जमाखोरों पर नियंत्रण रख पाने में काफी हद तक कामयाब हुई। धीरे-धीरे भारत में भी उपभोक्ता के हितों के संरक्षण के लिए कानून बने। 1986 का उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम ह

इस तरह उपभोक्ता जागरूकता के लिहाज से अस्सी का दशक उल्लेखनीय महत्व का ह इस शताब्दी के अंतिम दशक में हालांकि आर्थिक सुधारों की घोषणा से समाज में उपभोग की प्रवृत्ति में तो बहुत तेजी से वृद्धि हुई, लेकिन उपभोक्ता आंदोलनों में कुछ ढीलापन आया। विदेशी उपग्रह टीवी चैनलों के हमले से भारतीय समाज में व्यापक बदलाव के संकेत दिखाई दिए हैं। कोई स्पष्ट मीडिया पालिसी न बन पाने से सब कुछ संक्रमण के दौर से गुजरता दिखाई पड़ रहा ह लेकिन उपभोक्तावाद ने समाज में गहरी जड़ें जमाई हैं। इसका स्पष्ट प्रभाव मीडिया पर पड़ा ह एक तरफ उपभोक्तावाद का जबर्दस्त प्रभाव मीडिया पर पड़ा ह जिससे वह स्वयं भी उपभोक्ता उत्पाद में तब्दील होता जा रहा ह फिर भी उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिए उपभोक्ता संगठन और मीडिया एक-दूसरे के पूरक हैं। वे मिलकर उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। उनके कामों की झलक इस प्रकार हो सकती ह

-उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों, हितों, उपभोक्ता वस्तुओं के बारे में जागरूक करना। समाज के गरीब तबकों में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण में होने वाली गड़बड़ी को दुरुस्त करना।

-उत्पादों का तुलनात्मक परीक्षण करना, एक तरह के उत्पादों के स्तर का निर्धारण करना और आम जनता को इसकी जानकारी देना।

-उत्पादकों व कानून लागू करने वाली सरकारी एजेंसियों के बीच समन्वय का कार्य करना।

इस तरह आज भारत में उपभोक्तावाद कोई नया शब्द नहीं रह गया ह उपभोक्ताओं में जागृति आ रही ह अपने अधिकारों व हितों से वे वाकिफ हो रहा ह अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण से इसके

स्वरूप का विस्तार हो रहा ह मीडिया पर उपभोक्तावाद का जबर्दस्त असर पड़ा ह ऐसा लगता ह कि अगली सदी में न सिर्फ हमारे उपभोक्ता बाजार में व्यापक बदलाव आएगा बल्कि मीडिया की तस्वीर भी बदल जाएगी।

उपभोग की प्रवृत्ति में उफान

आर्थिक उदारीकरण के बाद हमारे समाज में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया ह कि लोगों में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी ह और वे नई नजर से चीजों को देखने लगे हैं। अब वे रातोंरात अमीर बनना चाहते हैं, और उपभोग की वस्तुओं पर खर्च करने लगे हैं। उनका दृष्टिकोण व्यापक हो रहा ह देश में एक नया मध्यवर्ग उभरा ह जो नई-नई वस्तुओं को उसी तरह से खरीद-बेच रहा ह जिस तरह पश्चिमी समाज में होता ह इन वर्षों में हमने यह भी देखा ह कि यदि किसी वस्तु की बाजार में मांग नहीं ह तो भी वह विज्ञापनों के जरिए, मार्केटिंग के जरिए इस तरह पेश कर दी जाती ह कि उस वस्तु विशेष की धड़ाधड़ बिक्री शुरू हो जाती ह मिसाल के लिए 1990 के आसपास दुपहिया वाहनों की बिक्री में आया उफान और पिछले दो-तीन सालों में छोटी कारों के प्रति मध्य वर्ग में आए जबर्दस्त आकर्षण खरीद-फरोख्त को देखा जा सकता ह घरेलू उपभोक्ता वस्तुओं, किचन की बढ़ती मांग को भी देख सकते हैं। अत्याधुनिक वाशिंग मशीनों, एयर कंडीशनरों की बढ़ती मांग को भी देख सकते हैं। इसी तरह पाश्चात्य फास्ट फूड, डिब्बाबंद सामान, फिल्टर किए गए पानी और मैनेजमेंट की शिक्षा के प्रति लोगों के बढ़ते आकर्षण को भी देखा जा सकता ह हम देशवासियों द्वारा उपभोग पर किए जाने वाले व्यय के क्रामिक विकास की एक झलक यहां पेश कर रहे हैं।

10.10 बोध प्रश्न व उत्तर

व्यावहारिक बोध-1

अपने दैनिक जीवन में कभी न कभी खरीदी गई किसी वस्तु या सेवा, यथा-रेल बस यात्रा, टेलीफोन-बिजली के बिल से निराशा हुई होगी। तब आपको भी लगा होगा कि आप अपने साथ हुई इस धोखाधड़ी के खिलाफ किसी उचित फोरम में शिकायत करें। सिर्फ इसलिए नहीं कि इससे आपको

मुआवजा मिलेगा, बल्कि इसलिए भी कि किसी और के साथ, ऐसी धोखधड़ी न हो। आपको अपने खर्च किए गए धन के बराबर मूल्य की वस्तु या सेवा लेने का पूरा अधिकार ह इस तरह एक खरीदार के रूप में आपके अधिकार का हनन हुआ ह और आप कानूनन संरक्षण के पात्र हैं। अब इस तरह की घटनाओं को याद कीजिए और नीचे लिखी तालिका के अनुरूप अपनी समस्या को सिलसिलेवार लिखने की कोशिश कीजिए।

वर्ग	**उपभोक्ता के रूप में आपकी शिकायत**
पानी	----------
बिजली	----------
गेहूं/चावल	----------
चीनी	----------
खाद्य तेल	----------
परिवहन	----------
क*सेवा*	----------

व्यावहारिक बोध-2

आपके पड़ोस में एक बच्चा अतिसार से पीड़ित ह और आप तुरंत नमक चीनी का घोल पिलाकर बच्चे को बचा लेते हैं। बच्चे के माता-पिता हर हैं कि आपने क बिना डाक्टरी की पढ़ाई किए यह सब सीख लिया। आपने यह इसलिए कर लिया कि आप ऐसे विज्ञापन देखते हैं। ऐसे लाभकारी विज्ञापनों की एक सूची बनाइए जो कि आपने देखे या पढ़े हैं।

अपनी प्रगति जांचिए-1

1- निम्न प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर लिखिए

2- अपने उत्तर की जांच यूनिट के अंत में दिए गए हल से कीजिए।

प्रश्न-1 किसी प्रतिष्ठित कंपनी के प्रेशर कुकर खाना बनाते समय फट जाता ह इससे जान-माल की क्षति भी होती ह यह घटना गारंटी काल समाप्त होने से पहले ही घट जाती ह यहां उपभोक्ता के कौन से अधिकारों का हनन होता ह?

प्रश्न-2 ज्यादातर रेफ्रिजिरेटरों में प्रशीतक के तौर पर क्लोरोफ्लोरो कार्बन का इस्तेमाल होता ह यह सेहत के लिए हानिकारक ह कुछ जागरूक उपभोक्ता ऐसा फ्रिज खरीदना चाहते हैं, जिसमें सीएफसी का इस्तेमाल न होता हो। इस तरह उपभोक्ता किस अधिकार के तहत यह मांग कर रहे हैं?

प्रश्न-3 एक अखबार समूह ने अपने अखबारों का प्रसार बढ़ाने के लिए अपने अखबारों की कीमतों में भारी

कटौती की कोशिश की ह, जिससे उसके अखबारों का प्रसार बढ़ रहा ह और अन्य समूहों के अखबारों का प्रसार घट रहा ह आखिर किस अधिकार के तहत एक पत्र समूह इस तरह की नीति लागू करना चाहता ह?

अपनी प्रगति जांचिए-2

1- निम्न वक्तव्य सही ह या गलत?

2- अपने उत्तरों को अंत में दिए गए उत्तरों से मिला कर जांचिए।

अ- पश्चिम में उपभोक्तावाद भौतिक समृद्धि के बाद आया।

सही---------- गलत----------

ब- अमेरिका में उपभोक्तावाद का जनक 'राल्फ नाडार' था।

सही---------- गलत----------

स-भारत में मिलावट, कालाबाजारी से उपभोक्तावाद ने जन्म लिया।

सही---------- गलत----------

अपनी प्रगति जांचिए-3

नीचे लिखी स्थितियों में बताइए कि किस तरह उपभोक्ता हितों को नुकसान पहुंचता ह? अपने उत्तरों को अंत में दिए गए उत्तरों से मिला लीजिए।

1-एक बस यात्री निर्धारित स्टैंड पर बस में नहीं चढ़ पाया क्योंकि वहां पर बस रुकी ही नहीं।

2-एक उपभोक्ता मिर्च पाउडर का एक पैकेट खरीदता ह जिसमें लाल रंग की मिट्टी मिली हुई ह

3-एक दुकानदार टेलीविजन सेट बेचता ह लेकिन न तो सर्विस और न ही मरम्मत की कोई गारंटी देता ह

अपनी प्रगति जांचिए-4

1- खाद्य सामग्री में मिलावट पाई जाने पर कौन से कानून के अंतर्गत कार्रवाई होगी।

2- यदि कोई दुकानदार डंडी मारता ह या सामान तौलने में हेराफेरी करता ह तो कौन-सा कानून लागू होगा?

3- उपभोक्ता संरक्षण कानून 1986 क्या आज की उपभोक्ता जरूरतों के हिसाब से पूर्ण ह? नहीं ह तो क्यों?

उत्तर:

अपनी प्रगति को जांचिए -1

1- उपभोक्ता को सुरक्षित माल लेने का अधिकार प्राप्त ह माल के लेबल पर या विज्ञापन में उसकी जो विशेषताएं गिनाई हैं, उनके अनुरूप माल मिलना ही चाहिए। यदि प्रेशर कुकर इन विशेषताओं पर खरा नहीं उतरता ह, तो यह कानून का उल्लंघन ह

2- उपभोक्ताओं को यह अधिकार ह कि वे उत्पादकों को अपनी जरूरतों के हिसाब से प्रभावित करें ताकि जीवन को हानि की बजाय लाभ हो।

3- कम मूल्य पर अखबार बेचने वाले पत्र समूह को मार्केटिंग की कोई भी नीति लागू करने का अधिकार ह बशर्ते कि उपभोक्ता का अहित न होता हो।

अपनी प्रगति को जांचिए-2

1- सही

2- सही

3- सही

अपनी प्रगति को जांचिए-3

1- उपभोक्ता के तौर पर उपभोक्ता को यह अधिकार ह कि उसे उचित बस सेवा मिले जिसके लिए वह किराया देता ह यहां तो बस में चढ़ना ही मुश्किल ह

2- उपभोक्ता का यह अधिकार ह कि वह जो भी वस्तु ले रहा ह, वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न हो। यह वस्तु न सिर्फ घटिया ह बल्कि सेहत के लिए भी नुकसानदेह ह

3- जो दुकानदार बिना गारंटी कार्ड के टीवी सेट बेचता ह, वह जरूर हेराफेरी कर रहा ह वह सामान नकली भी हो सकता ह

अपनी प्रगति को जांचिए-4

1-खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1954

2-बाट और माप मानक अधिनियम 1996

3-यद्यपि यह कानून उपभोक्ता के अन्यान्य अधिकारों की रक्षा करता ह, लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में इसे चुस्त बनाए जाने की जरूरत ह